

॥ श्री ॥

शिवस्वरोदय.

श्रीशिवपार्वती संवाद.

ताकौ

अतिउत्तम भाषाटीका बनवायकर
पंडित श्रीधर शिवलालजीके

“ ज्ञानसागर ” छापखानेके

मालिकने

स्वकीय यंत्रालयमें मुद्रित किया.

मुंबई.

फाल्गुन कृष्ण. १ संवत् १९५२ सन १८९६.

सन १८६७ के २५ में आक्ट मुजब
रजिष्टर कियाहै.

जाहिरात.

समस्त सज्जन लोगोंको जाहिर करनेमें आता है कीं “योगचिंतामणी” नामक वैद्यक ग्रंथ हमारे यहां कैदीनोंसे छपता है जिसकी तीन आवृत्ति छपचूकी और बिकभीगयी, परंतु कईएक महाशयोंकी सूचनाब-होत दीनोंसे चली आती है की, यह जो बचनिकायुक्त ग्रंथ है सो यदि सरल हिंदीभाषामें होवे, और संपूर्ण श्लोकोंका खुलासेवार अर्थ लिखा जावे तो इसका उप-योग लोगोंको बहोतही होगा ऐसी सूचनासे हमने अबकी आवृत्तिमें विपुल द्रव्य खर्च करके सुचनानुसार ग्रंथ तैयार किया जोकि पुस्तक पहेलेसे डेढा बढगया तोभी लोगोंको सुगम पडनेके अर्थ कींमत रु० १॥ टपाल ४ आना रख्खा है.

नवरात्रपद्धति—अतिउत्तम छपके तैयार है. जि-में चारों वर्णोंने नवरात्र पूजन करनेका क्रम लिखा है. किंमत ६ आना टपालखर्च. १ आना.

चांद्रायणव्रतकथा—भाषाटीकासह किंमत १॥ आना, टपालखर्च ॥ आधा आना.

अंत्येष्टि—इसमें मरणसे लेकर वर्षश्राद्धतकके सब वेषय हैं. किं० ५ आना टपाल खर्च १ आना.

पंडित श्रीधर शिवलाल.

प्रस्तावना.

इस असार संसारमें कुछभी अपने देह का साधन कर लेना चाहिये यह बात सत्य है, तथापी कलिकालमें समाधि जप तपादि साधन अत्यंत दुर्घट होपडे हैं तो धन, यश मोक्षको देनेवाला यह शिवपार्वती संवादरूप जो 'स्वरोदय' शास्त्र है इससे मनुष्योंके वांछितार्थ अवश्य सिद्ध होवेंगे ऐसा विचार कर प्राचीन हस्तलिखित पुस्तक तलाश कर उसपरस यह भाषांतर बनवाकर लोकहितार्थ सादर किया है आशा है, कीं, इसमें कहे हुये विधिके अनुसार जो लोग इसका उपयोग करेंगे तो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह करतलामल तुल्य होवेंगे, क्योंकि साक्षात् शिवजीके मुखसे निकलेहुए विषय हैं. इस शास्त्रको 'निगम ऐसी संज्ञा है. निगम उसको कहिये की जो—(आगतं शिववक्त्रात्तुगतंच गिरिजामुखे) तो इस ग्रंथको गुरुमुखसे समझ कर इसका उपयोग करें यह मेरी प्रार्थना है.

पंडित श्रीधर शिवलाल.

ज्ञानसागर छापखाना.

॥ श्रीः ॥

अनुक्रमणिका.

संख्या.	विषय.	पृष्ठांक.
१	मंगलाचरणम्	१
२	पार्वतीजीका शंभुको ज्ञान ध्यान ब्रह्मांडके उत्पन्न लन लयका वृत्तांत पूछना.	१
३	श्रीशंकरका समझाना	२
४	श्रीशंकरजीका तत्वका स्वरूप वर्णन करना.	२
५	ग्रंथ पढनेका लाभ वर्णन.	२
६	स्वरोदय माहात्म्य.	३
७	अधिकारी लक्षण	३
८	स्वर माहात्म्य	४
९	नाडियोंकी संख्या और उनकी चाल	७
१०	नाडियोंके उत्तम निष्कृष्ट भेद.	७
११	इडादिनाडियोंके स्थान	८
१२	नाड्याश्रित वायुओंके नाम तथा स्थानोंकी अवस्था	९
१३	नाडी ज्ञान	१०
१४	नाडियोंकी गती	११
१५	तत्वध्यान करनेका काल व फल	११
१६	दुष्टादुष्ट नाडी भेद	१२
१७	उचित कार्य करनेका वर्णन	१२
१८	चंद्रसूर्यके काल तथा संख्या	१३
१९	वामदक्षिण स्वर जानके त्रिलोकी वश्य करनेकी क्रिया	१४
२०	वार परत्वे नाडियोंका फल	१४
२१	तत्वोंका उद्भव	१५

संख्या.	विषय.	पृष्ठांक
२३	स्वर चलनेका शुभाशुभ	१५
२४	गम्यागम्य वस्तुओंका काल और फल	१७
२५	स्वरोंके चलनेमें शुभाशुभ	१७
२६	यात्रामे स्वरका विचार	१८
२७	शयनसे उठनेका क्रम	१९
२८	पूर्ण तथा रिक्त हाथ गमन फल....	१९
२९	दूर निकट गमन करते स्वरविचार	२०
३०	क्रूर कामोंमें स्वर विचार	२०
३१	स्वरके योग्यायोग्य चलनेमें आचरणकरनेकाविचार	२०
३२	इडा नाडीमें कर्तव्य कार्य	२१
३३	पिंगलानाडीमें कर्तव्य कार्य	२४
३४	सुषुम्नाका फल ...	२५
३५	स्वर चलनेमें कार्य अकार्यका विचार	२६
३६	विद्वानोंको जाननेका स्वर	२७
३७	दूतका बैठना	२७
३८	संध्याज्ञान	२७
३९	शंकरप्रती पा० प्र० रहस्य विषे....	२८
४०	शंकरजीका उत्तर	२८
४१	स्वरसे ज्ञानी भूतोंकी चेष्टाको जानताहै	२८
४२	तत्त्वोंका ८ प्रकारका ज्ञान	२९
४३	स्वरावलोकन काल	३०
४४	स्वरावलोकन क्रिया स्वरूपवर्णन	३०
४५	पंचतत्त्व जाननेका भेद	३१
४६	तत्त्वोंके स्थिर रहनेकी व्यवस्था	३१
४७	स्वरोंका स्वाद	३१
४८	स्वरोंका परिणाम	३२

संख्या.	विषय.	पृष्ठांक.
४९	विषमस्वर चलनेका फल	३२
५०	जिस तत्वमें जोकार्य सिद्ध होताहै उसका वर्णन	३४
५१	ग्रहज्ञान प्रकार	३५
५२	परदेश विषयक प्रश्न	३६
५३	पंचतत्त्वोंके गुण वर्णन	३७
५४	पंचतत्त्वोंका माप	३७
५५	पंचतत्त्वोंमें लाभालाभ	३८
५६	पंचतत्त्वोंकी गुण संख्या	३८
५७	तत्त्वोंमें नक्षत्रोंका विभाग	३९
५८	तत्वका शुभाशुभ परिज्ञान	४०
५९	पृथिव्यादि बीजोंके ध्यान	४०
६०	स्वरज्ञानीकी प्रशंसा	४१
६१	युद्ध विचार	४२
६२	शिव पार्वती प्रश्नोत्तर	४३
६३	वायुके न्यून करनेका क्रम	४४
६४	युद्धमें चंद्र सूर्य स्वरसे जय पराजय ज्ञान	४६
६५	स्वर उपरसे शस्त्र बांधना तथा वाहन चढनेका क्रम	४७
६६	स्वरको देख देख युद्ध क्रम	४८
६७	युद्ध हयका प्रश्न	५१
६८	युद्ध हयके प्रश्नका उत्तर	५२
६९	स्वरका यथार्थ ज्ञान न होते प्रश्न कहनेवाला क्रम	५३
७०	स्वर ऊपरमे घूत खेलनेका क्रम....	५४
७१	यमसे जीतनेका पार्वतीका प्रश्न तथा शिवजीका उत्तर	५५
७२	पार्वतीजीका वशीकरण विषे प्रश्न तथा शिवजीका उत्तर	५६

संख्या.	विषय.	पृष्ठांक.
७३	स्त्री वशीकरण प्रकरण	५७ ^६
७४	गर्भ प्रकरण	५८ ^७
७५	गर्भ धारण विधि	५८ ^८
७६	ऋतुदान देनेके समयके स्वरोंका फल	५९ ^९
७७	संवत्सरके शुभाशुभका ज्ञान	६१ ^१
७८	रोग प्रकरण	६४ ^०
७९	कालज्ञान प्रकरण	६६ ^३
८०	बहुत कालतक जीवनेका उपाय	६७ ^३
८१	तीनवर्षसे मृत्यु होनेके लक्षण	६८ ^१
८२	एक वर्ष या छः महीना, तत्काल मृत्युका ज्ञान	६८ ^३
८३	रोगीका प्रश्रकरनेवाले दूतकी चेष्टा	६९ ^१
८४	आयुष्य जाननेके अनेक क्रम	७० ^१
८५	त्रिकालज्ञत्व प्राप्त होनेका क्रम	७३ ^१
८६	सिद्धि प्राप्त होनेके चिन्ह....	७४ ^१
८७	छायामें मृत्यु परीक्षा	७६ ^१
८८	मलमूत्रसे मृत्यु परीक्षा	७७ ^१
८९	कालज्ञानका फल	७९ ^१
९०	नाडी ज्ञान	७९ ^१
९१	पद्मासन बांधकर प्राण छोड़नेकी धन्यता.	८२
९२	स्वरज्ञानकी फल श्रुति	८४

इति शिवस्वरोद अनुक्रमणिका समाप्ता.

॥ श्रीः ॥
शिवस्वरोदयः ।

भाषाटीकासमेतः

श्रियःकान्तंपरंदेवं नत्वासर्वोत्तमंमया ॥
शिवस्वरोदयस्यैषाभाषाटीकाविरच्यते ॥ १ ॥
श्रीगणेशायनमः ॥ महेश्वरंनमस्कृत्यशैलजांग
णनायकं॥गुरुंचपरमात्मानंभजेसंसारतारणं ॥१॥

अर्थ—महादेवको नमस्कार कर पार्वती गणेश गुरु इन-
को नमन कर संसारतारक परमात्माको भजताहूँ ॥ १ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवकृपांकृत्वाम-
मोपरी॥सर्वसिद्धीकरंज्ञानंकथयस्वममप्रभो ॥२॥

अर्थ—पार्वती महादेवजीसे पूछतीहै. हे देवनकेदेव महा-
देव मेरेपर कृपा करके हे प्रभो मेरेवास्ते सर्व सिद्धिकारक
ज्ञान कहो ॥ २ ॥

कथंब्रह्मांडमुत्पन्नंकथंवापरिवर्तते ॥

कथंविलीयतेदेववदब्रह्मांडनिर्णयं ॥ ३ ॥

अर्थ—ब्रह्मांड कैसे उत्पन्न भया और कैसे स्थित हो रहाहै
और कैसे प्रलय होताहै हे देव ब्रह्मांडके निर्णयको कहो॥३॥

॥ ईश्वरउवाच ॥ तत्वाद्ब्रह्मांडमुत्पन्नंतत्वेनपरिव-
र्तते॥तत्वेविलीयतेदेवितत्वाद्ब्रह्मांडनिर्णयः ॥४॥

अर्थ—महादेवजी बोले तत्त्वसे ब्रह्मांड उत्पन्न भया तत्त्वसेही पालना होती है तत्त्वमेंही लीन होताहै हे देवी ऐसे तत्त्वसेही ब्रह्मांडका निर्णय है ॥ ४ ॥

॥ देव्युवाच ॥ तत्त्वमेवपरमूलंनिश्चितंतत्त्ववा
दिभिः ॥ तत्त्वस्वरूपंकिंदेवतत्त्वमेवप्रकाशय ॥ ५ ॥

अर्थ—पार्वती पूछतीहै हेदेव तत्त्वदर्शी जनोनें तत्त्वही परम मुल निश्चित कियाहै सो तत्त्वका क्या स्वरूपहै. यह, तुमही प्रकाशकरो ॥ ५ ॥

ईश्वरउवाच॥निरंजनोनिराकारएकोदेवोमहेश्वरः
तस्मादाकाशमुत्पन्नमाकाशाद्वायुसंभवः ॥ ६ ॥

अर्थ—शिवजी बोले, निर्लेप निराकार एक महेश्वर देव है तिससे, आकाश उत्पन्न भया आकाशसे वायु उत्पन्न भया

वायोस्तेजस्ततश्चापस्ततःपृथ्वीसमुद्भवः ॥ ए
तानिपंचतत्त्वानिविस्तीर्णानिचपंचधा ॥ ७ ॥

अर्थ—वायुसे अग्नि अग्निसे जल जलसे पृथ्वी उत्पन्न भई है येही पांचतत्त्व पांचप्रकारसे पंचीकरण होके विस्तृत होरहेहैं .

एतैर्ब्रह्मांडमुत्पन्नंतैरेवपरिवर्तते ॥

विलीयतेचतत्रैवतत्रैवरमतेपुनः ॥ ८ ॥

अर्थ—तिनसे ब्रह्मांड उत्पन्न भया तिनसेही स्थिति पालना होती है तिनमेंही लीन हो जाता है फिर सूक्ष्म रूपसे तहांही रमण करता है ॥ ८ ॥

पंचतत्त्वमयंदेहंपंचतत्त्वानिसुंदरि ॥

सूक्ष्मरूपेणवर्ततेज्ञायतेतच्चयोगिभिः ॥ ९ ॥

अर्थ—हे सुंदरी पांच तत्त्वोंकांही देह है तहां शरीरमें सू-

क्षमरूप करके पांच तत्त्वही वर्ततेहैं वै तत्त्व योगीजनोंसे जाने जाते हैं ॥ ९ ॥

अतःपरंप्रवक्ष्यामिशरीरस्थंस्वरोदयं ॥ हंसचार
स्वरूपेणभवेज्ज्ञानंत्रिकालजं ॥ १० ॥

अर्थ अब इससे आगे शरीरमें स्थित हुए स्वरोदय, स्वरकी उत्पत्तिको कहेंगा. इसके हंसचार स्वरूप करके त्रिकालका ज्ञान होता है ॥ १० ॥

गुह्याद्गुह्यतरंसारमुपकारप्रकाशनं ॥ इदंस्वरोद
यंज्ञानंज्ञानानांमस्तकेमणिः ॥ ११ ॥

अर्थ—यह स्वरोदय ज्ञान गुह्य वस्तुओंसेभी गुह्य, गुप्त है उपकारका प्रकाशक सारहै सब ज्ञानोंका शिरोमणी है॥११॥

सूक्ष्मात्सूक्ष्मतरंज्ञानंसुबोधंसत्यप्रत्ययं ॥ आश्र
यंनानास्तिकेलोकेआधारंत्वास्तिकेजने ॥ १२ ॥

अर्थ—यह सूक्ष्मसेभी अति सूक्ष्म स्वरोदय सुंदर बोधकारकहै सत्यका निश्चय करानेवाला है नास्तिक जनोंमें आधार है आस्तिक जनोंका आधारहै ॥ १२ ॥

॥अथशिष्यलक्षणं॥ शांतेशुद्धेसदाचारेगुरुभक्तये
'कमानसे॥दृढचित्तेकृतज्ञेचदेयंचैवस्वरोदयं॥१३॥

अर्थ—अब शिष्यका लक्षण कहतेहैं शांत स्वभाववाला, शुद्ध अंतःकरण वाला, श्रेष्ठ आचरणवाला गुरुकी भक्तिमें एकाग्र मनवाला दृढचित्त कृत ऐसे शिष्यको स्वरोदय शास्त्र देना चाहिये ॥ १३ ॥

दुष्टेचदुर्जनेकुद्धेअसत्येगुरुतल्पगे ॥

हीनसत्वेदुराचारेस्वरज्ञानंनदीयते ॥ १४ ॥

अर्थ—दुष्ट दुर्जन क्रोधि नास्तिक. गुरुस्त्रीके संग मैथुन करनेवाला धोरज रहित दुराचारी ऐसे जनको स्वरका ज्ञान न देना ॥ १४ ॥

शृणुत्वं कथितं देवी देहस्थं ज्ञानमुत्तमं ॥

येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रणीयते ॥ १५ ॥

अर्थ—हे देवी देहमें स्थित हुये मेरेसे कहे हुए उत्तम स्वरोदय ज्ञानको सुन इसके जानने मात्रसे सर्वज्ञता होती है ॥ १५ ॥

स्वरे वेदाश्च शास्त्राणि स्वरे गांधर्वमुत्तमं ॥

स्वरे च सर्वत्रैलोक्यं स्वरमात्मस्वरूपकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—स्वरमें संपूर्ण वेद और शास्त्र है स्वरमें उत्तम गान विद्या है स्वरमें ही संपूर्ण त्रिलोको है स्वरही आत्मस्वरूप है ॥ १६ ॥

स्वरहीनं च दैवज्ञनाथहीनं यथा गृहं ॥ शास्त्रहीनं

यथा वक्ता शिरोहीनं च यद्वपुः ॥ १७ ॥

अर्थ—स्वरविद्यासे हीन ज्योतिषी, स्वामीसे हीन घर शास्त्रसे हीन मुख, शिरके बिना देह, ये सब कच्चे लु नहीं हैं, ॥ १७ ॥

नाडीभेदं तथा प्राणतत्त्वभेदं तथैव च ॥ सुषुम्नामि

श्रभेदे च योजानाति समुक्तिगः ॥ १८ ॥

अर्थ—नाडीभेद प्राणतत्त्वोंका भेद सुषुम्ना आदि मिश्रित तीन नाडियोंका भेद इनको जो जानता है वह मोक्षको प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

साकारेवानिराकारेशुभं वायुबले कृते ॥ कथय

ति शुभं केचित्स्वरज्ञानं वरानने ॥ १९ ॥

अर्थ—हे वरानने वायुका साकार अथवा निराकार बल लक्षण होनेमें स्वरके ज्ञानकोही कित्तेक जन शुभाशुभ कहतेहैं ॥ १९ ॥

ब्रह्मांडखंडपिडाद्यंस्वरेणैवहिनिर्मितं ॥ सृष्टिसं
हारकर्ताचस्वरःसाक्षान्महेश्वरः ॥ २० ॥

अर्थ—ब्रह्मांडके खंड तथा पिंड. शरीर आदिक स्वरसे ही रचे हुयहैं सृष्टिके संसारको करनेवाला महेश्वरभी साक्षात् स्वर स्वरूपहै ॥ २० ॥

स्वरज्ञानात्परंगुह्यंस्वरज्ञानात्परंधनं ॥ स्वरज्ञाना
त्परंज्ञानंनवादृष्टंनवाश्रुतं ॥ २१ ॥

अर्थ—स्वरके ज्ञानसे उत्तम गुह्य स्वर ज्ञानसे उत्तम धन स्वर ज्ञानसे उत्तम ज्ञान न तो देखा न सुना ॥ २१ ॥

लक्ष्मिप्राप्तिःस्वरबलेकीर्तिःस्वरबलेसुखं ॥ शत्रुं
हन्यात्स्वरबलेतथामित्रसमागमः ॥ २२ ॥

अर्थ—स्वरके बल होनेमें शत्रुको मारदेवै तथा मित्रका समागम होजावे स्वरके बल होनेमें लक्ष्मीकी प्राप्ति स्वरके बल होनेसे कीर्ति तथा सुख होता है ॥ २२ ॥

कन्यासिद्धिःस्वरबलेस्वरबलेराजदर्शनं ॥ स्व
रेणदेवतासिद्धिःस्वरबलेक्षितिपोवशः ॥ २३ ॥

अर्थ—स्वरके बलसे कन्याकी प्राप्ति अर्थात् विवाह होवे राजाका दर्शन होवे स्वरसेही देवताकी सिद्धी और स्वरसे राजाको वशमें करना होताहै. ॥ २३ ॥

स्वर्बलेगम्यतेदेशेभोज्यंस्वरबलेतथा ॥
लघुदीर्घस्वरबलेमलंचैवनिवारयेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—स्वरके बलसे देशान्तरमें जाना और उत्तम भोजन प्राप्त होताहै स्वरके बलसे लघुशंका और मलका त्याग भी होताहै ॥ २४ ॥

सर्वशास्त्रपुराणादिस्मृतिवेदांगपूर्वकं ॥

स्वरज्ञानात्परंतत्वंनास्तिकिंचिद्वरानने ॥ २५ ॥

अर्थ—हे वरानने संपूर्ण शास्त्र पुराण आदि स्मृति और वेदांग इत्यादिक कछुभी स्वरज्ञानसे परै उत्तम तत्त्व नहींहै ॥ २५ ॥

नामरूपादिकाःसर्वेमिथ्यासर्वेषुविभ्रमः ॥

अज्ञानमोहितामूढायावत्तत्वंनविद्यते ॥ २६ ॥

अर्थ—जबतक तत्त्व नहीं जाना जाताहै तबतक सबोंमें नाम रूप आदिक मिथ्या भ्रम रहता है और अज्ञानमोहित जनभी तबतकहै ॥ २६ ॥

इदंस्वरोदयंशास्त्रंसर्वशास्त्रोत्तमोत्तमं ॥

आत्मघटप्रकाशार्थप्रदीपकलिकोपमं ॥ २७ ॥

अर्थ—यह स्वरोदय शास्त्र संपूर्ण उत्तम शास्त्रोंमेंभी श्रेष्ठ है आत्मरूपी घटको प्रकाश करनेमें दीपककी कलिका अर्थात् लोयके समान है ॥ २७ ॥

यस्मैकस्मैपरस्मैवाप्रोक्तंचप्रश्नहेतवे ॥

तस्मादेतत्स्वयंज्ञेयमात्मनैवात्मनात्मनि ॥ २८ ॥

अर्थ—यह शास्त्र पूछनेसेही जिस किसीकेवास्ते नहीं देना किंतु आपही अपनेवास्ते अपनी बुद्धि करके अपने शरीरमें जानै ॥ २८ ॥

नतिथिर्नचनक्षत्रंनवारोग्रहदेवता ॥

नचविष्टिर्यतीपातवैधृताद्यास्तथैवच ॥ २९ ॥

अर्थ—तिथी नक्षत्र वार ग्रह देवता भद्रा व्यतीपात वैधृत इत्यादिक दोष इस स्वरोदय शास्त्रमें नहीं है ॥ २९ ॥

कुयोगोनास्तिहेदेविभवितावाकदाचन ॥

प्राप्तेस्वरबलेशुद्धेसर्वमेवशुभंफलम् ॥ ३० ॥

हे देवी इसमें कोई बुरा योगभी नहीं है और कभी बुरा योग होगाभी नहीं स्वरके शुद्ध बल प्राप्त होनेपर सब-हि शुभ फल होते हैं ॥ ३० ॥

देहमध्येस्थितानाड्योबहुरूपाःसुविस्तरात् ॥

ज्ञातव्याश्चबुधैर्नित्यंस्वदेहज्ञानहेतवः ॥ ३१ ॥

अर्थ—देहके बीचमें बहुतसे रूपवाली नाडियां विस्तार पूर्वक स्थितहो रहीहैं वे सब पंडित जनोंने अपने देहके ज्ञानकेवास्ते जाननी चाहिये ॥ ३१ ॥

नाभिस्थानककंदोत्थंअंकुरादेवनिर्मिताः ॥

द्विसप्ततिसहस्राणिदेहमध्येव्यवस्थिताः ॥ ३२ ॥

अर्थ—नाभि स्थानमें स्थित हुए कंदके ऊपर अंकुर स्वरूपसे निकसी हुई बहत्तर ७२ नाडियां देहके मध्यमें व्यवस्थित हो रही हैं ॥ ३२ ॥

नाडिस्थाकुंडलीशक्तिर्भुजंगाकारशायिनी ॥

ततोदशोर्ध्वगानाड्योदशैवाधःप्रतिष्ठिताः ३३ ॥

अर्थ—नाडियोंमें स्थित हुई कुंडली शक्तिहै सो सर्पके आकार सोती हुई है तिससे ऊपरकी तर्फ गई हुई दशनाडी है और दशनाडी नीचेको गई हैं ॥ ३३ ॥

द्वेद्वेतिर्यगतेनाड्योचतुर्विंशतिसंख्यया ॥

प्रधानादशनाड्यस्तुदशवायुप्रवाहकाः ॥ ३४ ॥

अर्थ—और दोदो नाडी तिरछी गई है ऐसे चौबीस नाडीय हैं तहां दशनाडी तो प्रधान है और दश वायुको वहाने वाली है ॥ ३४ ॥

तिर्यगूर्ध्वमधस्थावावायुदेहसमान्विताः ॥

चक्रवत्संस्थितादेहेसर्वेप्राणसमाश्रिताः ॥ ३५ ॥

अर्थ—तिरछी ऊंची और नीची स्थित हुई नाडियां वायु और देहके आश्रित हैं देहमें चक्रकी तरह संयुक्त हैं तबही, प्राणोंके आश्रय है ॥ ३५ ॥

तासांमध्येदशश्रेष्ठादशानांतिस्रउत्तमाः ॥

इडाचपिंगलाचैवसुषुम्णाचतृतीयका ॥ ३६ ॥

अर्थ—तिन्होंके विषे दशनाडी श्रेष्ठ हैं उनमेंभी तीन नाडी उत्तम हैं इडा पिंगला तीसरी सुषुम्ना है ॥ ३६ ॥

गांधारीहस्तिनीजिह्वापूषाचैवयशस्विनी ॥

अलंबुषाकुहुश्चैवशंखिनीदशमीतथा ॥ ३७ ॥

अर्थ—और गांधारी हस्तिजिह्वा पूषा यशस्विनी अलंबुषा कुहु, दशवीं शंखिनी हैं ॥ ३७ ॥

इडावामेस्थिताभागेदक्षिणेपिंगलातथा ॥

सुषुम्णामध्यदेशेतुगांधारीवामचक्षुषि ॥ ३८ ॥

अर्थ—इडानाडी शरीरके वाम भागमें स्थित है पिंगला दाहिने भागमें स्थित है सुषुम्ना मध्यभागमें स्थित है गांधारी बायें नेत्रमें स्थित है ॥ ३८ ॥

दक्षिणेहस्तिजिह्वाचपूषाकर्णेचदक्षिणे ॥

यशस्विनीवामकर्णेआननेचाप्यलंबुषा ॥ ३९ ॥

अर्थ—दहिने नेत्रमें हस्ति जिह्वा नाडी स्थित है पूषा कानमें स्थित है अलंबुषा मुखमें स्थित है ॥ ३९ ॥

कुहुश्चलिंगदेशेतुमूलस्थानेतुशंखिनी ॥

एवंद्वारंसमाश्रित्यतिष्ठतिदशनाडिकाः ॥ ४० ॥

अर्थ—कुहलिंग देशामें स्थित है और शंखिनी गुदास्थानमें है ऐसे शरीरके द्वारोंके आश्रित हुई ये दशनाडीटिक रही हैं ४०

इडापिंगलासुषुम्नाचप्राणमार्गसमाश्रिताः ॥

एताहिदशनाड्यस्तुदेहमध्येव्यवस्थिताः ॥ ४१ ॥

अर्थ—इडा पिंगला सुषुम्ना ये तीनों नाडी शरीरके मध्यमें स्थित हैं ॥ ४१ ॥

नामानिनाडिकानांतुवातानांतुवदाम्यहम् ॥

प्राणोऽपानःसमानश्चउदानोव्यानएवच ॥ ४२ ॥

अर्थ—नाडियोंके नाम तो कह दिये अब नाडियोंके आश्रित हुई वायुओंके नामोंको कहते हैं प्राण अपान समान उदान व्यान ॥ ४२ ॥

नागःकूर्मोथकृकलोदेवदत्तोधनंजयः ॥ हृदिप्रा

णोवसेन्नित्यमपानोगुदमंडले ॥ ४३ ॥

अर्थ—और नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय, ये नाम हैं हृदयमें नित्य प्राण वसता है आपानवायु, गुदामें रहता है ॥ ४३ ॥

समानोनाभिदेशेतुउदानःकंठमध्यगः ॥

व्यानोध्यापीशरीरेषुप्रधानादशवायवः ॥ ४४ ॥

अर्थ—समान नाभिमें स्थित है उदान कंठके मध्यमें

स्थितहै व्यान वायु संपूर्ण शरीरमें व्याप्त होके स्थित रहताहै ऐसे शरीरमें दशवायु प्रधानहै ॥ ४४ ॥

प्राणाद्याःपंचविख्यातानागाद्याःपंचवायवः ॥

तेषामपिचपंचानांस्थानानिचवदाम्यहम् ॥४५॥

प्राण आदि पांच वायुओंके स्थान कह दिये अब नाग आदि जो पांचवायु हैं तिनके भी स्थानोंको कहतेहैं ॥ ४५ ॥

उद्गारेनागआख्यातःकूर्मउन्मीलनेस्मृतः ॥

कृकलःक्षुतकृज्ज्ञेयोदेवदत्तोविजृम्भणे ॥ ४६ ॥

अर्थ-नागवायु उद्गार, अठकार लेनेमें है कूर्मवायु आखिनके खोलने मीचनेमें है कृकलवायु छींक लेनेमें है देवदत्तवायु जंभाई लेनेमें है ॥ ४६ ॥

नजहातिमृतंवापिसर्वव्यापीधनंजयः ॥

एतेनाडीषुसर्वासुभ्रमंतेजीवरूपिणः ॥ ४७ ॥

अर्थ-संपूर्ण शरीरमें व्याप्त होके रहनेवाला धनंजय मृत शरीरमेंभी रहताहै जीवरूपी ये दशवायु संपूर्ण नाडियोंमें भ्रमते रहतेहैं ॥ ४७ ॥

प्रकटंप्राणसंचारंलक्षयेद्देहमध्यतः ॥ इडापिंग

लासुषुम्नाभिर्नाडीभिस्तिष्ठतिर्बुधः ॥ ४८ ॥

अर्थ-देहके मध्यमें प्रकट रूप प्राणका संचारहै उसको बुद्धिमान इडा पिंगला सुषुम्ना इन तीन नाडियों करके पहिचाने ॥ ४८ ॥

इडावामेचविज्ञेयपिंगलादक्षिणेस्मृता ॥

इडानाडीस्थितावामाततोव्यस्ताचपिंगला ४९॥

अर्थ-इडा शरीरके वामभागमें जाननी पिंगला दहिने

भागमें जाननी इडा नाडी वामावर्त्तसे स्थितहै पिंगला दक्षिणावर्त्त, दक्षिणस्वरूप से स्थितहै ॥ ४९ ॥

इडायांतुस्थितश्चंद्रःपिंगलायांचभास्कर ॥

सुषुम्नाशंभुरूपेणशंभुर्हंसस्वरूपतः ॥ ५० ॥

अर्थ—इडामें चंद्रमा स्थितहै पिंगलामें सूर्य स्थितहै सुषुम्ना शिव स्वरूपसे स्थितहै शिवजी हंस स्वरूपसे स्थितहै ॥ ५० ॥

हकारोनिर्गमेप्रोक्तःसकारेणप्रवेशनम् ॥

हकारःशिवरूपेणसकारःशक्तिरुच्यते ॥ ५१ ॥

अर्थ—हकार स्वरके निकसनेमें कहाहै सकार अंदर स्वर प्रवेश होनेमें कहाहै. हकार शिवरूपहै सकार शक्ति रूप कहाताहै ॥ ५१ ॥

शक्तिरूपस्थितेचंद्रोवामनाडीप्रवाहकः ॥

दक्षनाडीप्रवाहश्चशंभुरूपोदिवाकरः ॥ ५२ ॥

अर्थ—बाईनाडीका प्रवाह करनेवाला चंद्रमा शक्तिरूप करके स्थितहै दक्षिण नाडीका प्रवाह करनेवाला सूर्य शिवरूपसे स्थितहै ॥ ५२ ॥

श्वासेसकारसंस्थेतुयद्दानंदीयतेबुधैः ॥ तद्दानं

जीवलोकेस्मिन्कोटिकोटिगुणंभवेत् ॥ ५३ ॥

अर्थ—सकारविषे स्थित हुये श्वासके समय जो बुद्धिमानोंसे दान दिया जाताहै वह दान इस जीवलोकमें कोटि कोटि अनंत गुना फल देताहै ॥ ५३ ॥

अनेनलक्षयेद्योगीचैकचित्तःसमाहितः ॥ सर्व

मेवविजानीयान्मार्गेवैचंद्रसूर्ययोः ॥ ५४ ॥

अर्थ—एकाग्र चित्तसे सावधान हुआ योगि इसही प्रकारसे देखे यह योगी सर्वको चंद्रमा और सूर्यकेही मार्गमें जानें ॥ ५४ ॥

ध्यायेत्तत्त्वंस्थिरेजीवेअस्थिरेनकदाचन ॥

इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्यमहालाभोजयस्तथा ॥ ५५ ॥

अर्थ—जो स्थिर जीव होनेके समयही तत्त्वका ध्यान करे. अस्थिर जीवके समय कर्म न करे तिसके वांछितकी सिद्धि होती है यह लाभ और जय होता है ॥ ५५ ॥

चंद्रसूर्यसमभ्यासंयेकुर्वतिसदानराः ॥ अती

तानागतज्ञानंतेषांहस्तगतंभवेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य चंद्रमा और सूर्यके स्वरोंका सदैव अच्छी तरहसे अभ्यास करतेहैं उनकी भूत भविष्यत् वर्तमानको ज्ञान हस्तगत अर्थात् भले प्रकारसे होता है ॥ ५६ ॥

वामेचामृतरूपास्याज्जगदाप्यायनंपरम् ॥

दक्षिणेचरभागेनजगदुत्पादयेत्सदा ॥ ५७ ॥

अर्थ—वामभागमें स्थित इडा नाडी अमृत स्वरूप है जगत्को पुष्प करनेवाली है दक्षिण भागमें चर भागमें स्थित पिंगला सदा जगत्को उत्पन्न करती है ॥ ५७ ॥

मध्यमाभवतिक्रूरादुष्टासर्वत्रकर्मसु ॥ सर्वत्रशु

भकार्येषुवामाभवतिसिद्धिदा ॥ ५८ ॥

अर्थ—मध्यमें रहनेवाली सुषुम्नानाडी क्रूर है सब शुभकर्मोंमें सिद्धिको देनेवाली है ॥ ५८ ॥

निर्गमेतुशुभावामाप्रवेशेदक्षिणाशुभा ॥

चंद्रसमस्सुविज्ञेयोरविस्तृविषमःसदा ॥ ५९ ॥

अर्थ—घरके निकसनके समय वांर्यीनाडी अच्छीह और प्रवेशके समय दहिनीनाडी शुभहै चंद्रमा सम कहा-ताहै, सूर्य विषम कहाताहै ॥ ५९ ॥

चंद्रःस्त्रीपुरुषःसूर्यश्चंद्रोगौरोसितोरविः ॥

चंद्रनाडीप्रवाहेनसौम्यकार्याणिकारयेत् ॥ ६० ॥

अर्थ—चंद्रमा गौर और सूर्य श्यामवर्ण जानना चंद्र-माकी नाडीके प्रवाहमें सौम्य कार्योंको करै ॥ ६० ॥

सूर्यनाडीप्रवाहेणरौद्रकर्मणिकारयेत् ॥ सुषु

म्नायाःप्रवाहेणभक्तिमुक्तिफलानिच ॥ ६१ ॥

अर्थ—सूर्यकी नाडीके प्रवाहमें क्रूरकर्म करना सुषुम्नाके प्रवाहमें भक्ति और मुक्तिको देनेवाले कर्मोंको करै ॥ ६१ ॥

आदौचंद्रःसितेपक्षेभास्करस्तुसितेतरे ॥

प्रतिपत्तोदिनान्याहुस्त्रीणित्रीणिक्रमोदयः॥६२॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें पहले तीन दिनतक चंद्रमा और कृष्ण पक्षमें प्रतिपदाआदि तीनदिन सूर्यका स्वर चलताहै यह क्रमसे उदय जानना ॥ ६२ ॥

सार्धद्विघटिकेज्ञेयःशुक्लेकृष्णेशशीरविः ॥ वह

त्येकदिनेनैवयथाषष्टिघटिक्रमात् ॥ ६३ ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें ढाई २॥ घटी चंद्रमा और कृष्णपक्षमें ढाई २॥ घटी पहले दिनके उदयमें सूर्यका स्वर चलता है ऐसे क्रमसे एकही दिनकी साठ ६० घडियों वहतेहैं॥ ६३ ॥

वहेयुस्तद्धटीमध्येपंचतत्त्वानिनिर्दिशेत् ॥

प्रतिपत्तोदिनान्याहुविपरीतेविपर्ययः ॥ ६४ ॥

अर्थ—और तिस एक २ की घडियोंके मध्य पांचोंतत्त्व

बहतेहैं ऐसा जानना और प्रातिपदासे जो तीन २ दिन कहेहैं उनमें जो विपरीत अर्थात् सूर्यके दिनोंमें चंद्रमा और चंद्रमाके दिनोंमें सूर्य होवे तो शुभकार्यमें वर्ज देवै ॥ ६४ ॥

शुक्लपक्षेभवेद्दामाकृष्णपक्षेचदक्षिणा ॥ जानी
यात्प्रतिपत्पूर्वयोगीतद्यतमानसः ॥ ६५ ॥

अर्थ—शुक्लपक्षमें पहले प्रतिपदासे लेके बार्थीनाडी और कृष्णपक्षमें पहले दहीनि नाडीको योगिजन एकाग्र चित्तसे जानें ॥ ६५ ॥

शशांकंवारयेद्रात्रौदिवावार्यौदिवाकरः ॥ इत्य
भ्यासरतोनित्यंसयोगीनात्रसंशयः ॥ ६६ ॥

अर्थ—रात्रीमें चंद्रमाके निवारण करै और दिनमें सूर्यके स्वरको निवारण करै ऐसे अभ्यासमें प्रयुक्त रहने वाला योगी उत्तम योगी है इसमें संदेह नहीं ॥ ६६ ॥

सूर्येणबध्यतेसूर्यश्चंद्रश्चंद्रेणबध्यते ॥ योजा
नातिक्रियामेतांत्रैलोक्यंवशयेत्क्षणात् ॥ ६७ ॥

अर्थ—सूर्यका स्वरकरके सूर्य बंद होताहै और चंद्रमाके स्वरकरके चंद्रमाका स्वर बंद होताहै ऐसी इस क्रियाको जो जानताहै उसके वशमें त्रिलोकी क्षणमात्रमेंहै ॥ ६७ ॥

गुरुशुक्रबुधेदूनांवासरेवामनाडिका ॥

सिद्धिदासर्वकार्येषुशुक्लपक्षेविशेषतः ॥ ६८ ॥

अर्थ—बृहस्पती शुक्र बुध सोम इन वारोंमें जब बार्थी नाडी चलीहो तब कियेहुए संपूर्ण काम सिद्ध होतहै और जो शुक्ल पक्षमें ऐसाही हो तो, अधिक शुभहै ॥ ६८ ॥

अर्कागारकसौरीणांवासरेदक्षनाडिका ॥

स्मर्त्तव्याचरकार्येषुकृष्णपक्षेविशेषतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—सूर्य मंगल शनि इन वारोंमें चलतीहुई दहिनीनाडी शुभहै और चरकार्योंमें तथा कृष्णपक्षमें अति शुभदायी है ६९

प्रथमंवहतेवायुर्द्वितीयंचतथानलः ॥ तृतीयंवह
तेभूमिश्रुतुर्थवारुणंवहेत् ॥ ७० ॥

अर्थ—प्रथम वायुतत्त्व वहताहै. दूसरा अग्नितत्त्व और तीसरे पृथ्वीतत्त्व वहताहै चौथे जलतत्त्व वहताहै ॥ ७० ॥

सार्धाद्विवटिकेपंचक्रमेणैवोदयंतिच ॥ क्रमा
देकैकनाड्यातुतत्त्वानांपृथगुद्भवः ॥ ७१ ॥

अर्थ—एक स्वरकी ढाई घटीमें ये पांचोंतत्त्व इस, क्रमसे प्रकट होतेहैं क्रमसे एक २ नाडीविषे क्रमसे पांचोंतत्त्व उत्पन्न होतेहैं ॥ ७१ ॥

अहोरात्रस्यमध्येतुज्ञेयाद्वादशसंक्रमाः ॥ वृषक
र्कटकन्यालिमृगमीनानिशाकरे ॥ ७२ ॥

अर्थ—दिन रातिमें बारह संक्रांति जाननी तहां वृष कर्क कन्या वृश्चिक मकर मीन ये चंद्रमाकी राशि है ॥ ७२ ॥

मेषसिंहौचकुंभश्चतुलाचमिथुनंधनम् ॥ उदये
दक्षिणेज्ञेयःशुभाशुभविनिर्णयः ॥ ७३ ॥

अर्थ—मेष सिंह कुंभ तुला मिथुन धन ये दहिनें स्वरके उदयमेंहैं ऐसे वस्तुका, शुभाशुभ निर्णय करना ॥ ७३ ॥

तिष्ठेत्पूर्वोत्तरेचन्द्रोभानुःपश्चिमदक्षिणे ॥ दक्षिणा
ढ्याःप्रसारेतुनगच्छेद्याम्यपश्चिमौ ॥ ७४ ॥

अर्थ—पूर्व और उत्तर दिशामें चंद्रमा ठरताहै पश्चिम और

दक्षिण दिशामें सूर्य ठहरताहै. दाहिनीनाडी चलतीहो तब दक्षिण ओर पश्चिम दिशामें गमन नकरै ॥ ७४ ॥

वामाचारप्रवाहेतुनगच्छेत्पूर्वउत्तरे ॥ परिपंथि
भयंतस्यगतोऽसौननिवर्त्तते ॥ ७५ ॥

अर्थ—वांयीनाडी चलतीहो तब पूर्व उत्तर दिशामें न जावे जानेंवालेको चोर शत्रु आदिकोंका भय होताहै तहां गया फिर उलटा नहीं आसकता ॥ ७५ ॥

तस्मात्तत्रनगन्तव्यंबुधैःसर्वहितैषिभिः ॥ तदा
तत्रतुसंयातेमृत्युरेवनसंशयः ॥ ७६ ॥

अर्थ—इसलिये सर्वके हितकी इच्छावाले बुद्धिमान् जनोंने तिस समय नहीं जाना उस समय जो तिन दिशाओंमें जानेंसैं मृत्युही होतीहै इसमें संदेह नहीं ॥ ७६ ॥

शुक्लपक्षेद्वितीयायामर्केवहतिचंद्रमाः ॥ दृश्य
तेलाभदःपुंसासौम्येसौख्यंप्रजायते ॥ ७७ ॥

अर्थ—शुक्लपक्षकी द्वितीयाको सूर्यके स्वरके समय, चंद्रमाका स्वर वहे तो पुरुषोंको सुख होताहै तिस समय सौम्य कार्य करनेमें सुख होताहै ॥ ७७ ॥

सूर्योदयेयदासूर्यश्चंद्रश्चंद्रोदयेभवेत् ॥ सिद्धयं
तिसर्वकार्याणिदिवारात्रिगतांन्यपि ॥ ७८ ॥

अर्थ—सूर्योदयमें सूर्यका स्वर चलताहो और चंद्रमाके उदयमें चंद्रमाका स्वर चलताहै उस दिनके तथा रात्रीके किये, सब कार्य सिद्ध होतेहैं ॥ ७८ ॥

चंद्रकालेयदासूर्यःसूर्यचंद्रोदयेभवेत् ॥ उद्वेगः
कलहोहानिःशुभंसर्वनिवारयेत् ॥ ७९ ॥

अर्थ—चंद्रमाके उदयमें सूर्यका स्वर चलताहै सूर्यके उद-
यमें चंद्रमाका स्वर चलताहो तो उद्देग कलह तथा हानि
होतीहै तहां शुभकर्म नकरै ॥ ७९ ॥

सूर्यस्यवाहेप्रवदंतिविज्ञाज्ञानंह्यगम्यस्यतुनिश्च
येन ॥ श्वासेनयुक्तस्यतुशीतरश्मेःप्रवाहकालेफ
लमन्यथास्यात् ॥ ८० ॥

अर्थ—सूर्यका स्वर चालताहो तब अगम्य अर्थात् जो
नहीं प्राप्तहोसक्तीहो तिस वस्तुका निश्चय ज्ञान होताहै और
चंद्रमाके स्वरसे युक्त पुरुषको यह ज्ञान नहींहो सक्ता ॥ ८० ॥

यदाप्रत्यूषकालेनविपरीतोदयोभवेत् ॥ चंद्र
स्थानेवहत्यर्कोरविस्थानेचचंद्रमाः ॥ ८१ ॥

अर्थ—अब विपरीत स्वरके लक्षण कहतेहैं जो यदि च्यार-
धटीके तडकै प्रातःकालसे लेके स्वरोंका विपरीत उदय
होवे चंद्रमाके स्थानमें सूर्यका स्वरहो और सूर्यके स्थानमें
चंद्रमाहो तो यह फलहै कि. ॥ ८१ ॥

प्रथमेमनसोद्वेगंधनहानिर्द्वितीयके ॥
तृतीयेगमनंप्रोक्तंइष्टनाशचतुर्थके ॥ ८२ ॥

अर्थ—पहले समयमें मनका उद्देग दुसरे समय धनकी
हानि तीसरे समयमें कहीं गमन होवे चौथे समयमें विप-
रीत स्वर होवे तो इष्टवस्तुका नश होताहै ॥ ८२ ॥

पंचमेराजविध्वंसंषष्ठेसर्वार्थनाशनम् ॥ सप्तमे
व्याधिदुःखानिअष्टमेमृत्युमादिशेत् ॥ ८३ ॥

अर्थ—पांचवे वार राज्यका विध्वंस छठे वार संपूर्ण

द्रव्यका नाश सातवेंमें बीमारीके दुःखका आना आठवेंमें मृत्यु होतीहै ॥ ८३ ॥

कालत्रयेदिनान्यष्टौविपरीतयदावहेत ॥

तदादुष्टफलंप्रोक्तंकिंचिन्न्यूनेतुशोभनम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—आठ दिनतक जो तीनों कालोंमें विपरीत स्वर चलता रहे तो अशुभ फल होताहै और कछु थोड़े दिनतक होंवे तो शुभफल होताहै ॥ ८४ ॥

प्रातर्मध्यान्हयोश्चंद्रःसायंकालेदिवाकरः ॥

तदानित्यंजयोलाभोविपरीतेतुदुःखदम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—प्रातःकाल तथा मध्यान्हमें चंद्रमाका स्वर होवे और सायंकालमें सूर्यका स्वर होवे तो नित्य जयलाभ होताहै इससे विपरीत होनेमें दुःख होताहै ॥ ८५ ॥

वामेवादक्षिणेवापियत्रसंक्रमतेशिवः ॥ कृत्वात

त्पादमादौचयात्राभवतिसिद्धिदा ॥ ८६ ॥

अर्थ—वामा अथवा दहिना कोईसा स्वर चलता होवे तब उसही पैरको आगे रखके गमन करे तो वह यात्रा सिद्धीको देनेवाली होतीहै ॥ ८६ ॥

चंद्रःसमपदःकार्योरविस्तुविषमःसदा ॥

पूर्णपादपुरस्कृत्ययात्राभवतिसिद्धिदा ॥ ८७ ॥

अर्थ—चंद्रमाकेस्वरमें २-४-६-आदि सम पैर आगे रखके और सूर्यके स्वरमें १-३-५-आदि विषम पैर आगे रखके ऐसे यथोक्त पूर्णपैर आगे रखके चलनेसे यात्रा सिद्धीको देनेवाली होतीहै ॥ ८७ ॥

चंद्रचारेचतुष्पादेपंचपादस्तुभास्करे ॥

एवंचगमनंश्रेष्ठंसाधयेद्भुवनत्रयं ॥ ८८ ॥

अर्थ—चंद्रमाका स्वर चलताहो तब बाये४पैर आगे रखकर और सूर्यका स्वर चलते समय दहिने, पांच पैर आगे रख के जो गमन किया जाताहै वह त्रिलोकीको साधताहै॥८८॥

यत्रांगेवहतेवायुस्तदंगस्यकरस्तलं ॥

सुप्तोत्थितोमुखंस्पृष्ट्वालभतेवांछितंफलं ॥ ८९ ॥

अर्थ—सांके उठनेके समय जौ नासा स्वर चलताहो उं सी अंगके हाथकी हथोलीसे मुखको स्पर्श करके खड़ा होवे तो मनोवांछित फल मिले ॥ ८९ ॥

परदत्तेतथाग्राह्येगृहान्निर्गमनेपिच ॥

यदंगेवहतेनाडीग्राह्यंतेनकरांध्रिणा ॥ ९० ॥

अर्थ—अन्यको दान देनेमें तथा अन्यसे [कछु] ग्रहण करनेमें घरसे गमन करनेमें जिस अंगका स्वर चलताहै उसी हाथ पैरसे करना ॥ ९० ॥

नहानिःकलहोनैवकंटकैर्नापिभिद्यते ॥

निवर्ततेसुखेनैवसर्वोपद्रववर्जितः ॥ ९१ ॥

अर्थ— ऐसे करनेवालेकै हानि कलह नहीं होतेहै और (कंटक) शत्रुवोंकरके छेदन नहीं होताहै निरंतर सुखसे रहता है संपूर्ण उपद्रवोंसे रहित रहताहै ॥ ९१ ॥

गुरुबंधुनृपामात्याअन्येपिशुभदायिनः ॥

पूर्णांगेखलुकर्तव्याःकार्यसिद्धिमभीप्सिताः ९२

अर्थ— गुरु बंधुजन राजा मंत्री, ये तथा शुभदायी जन इन सबोंके पूर्ण अंगमें करै अर्थात् जौ नासा स्वर पूर्ण चल ताहो उसीतर्फ करै ॥ ९२ ॥

अरिचौराधमर्णाद्याअन्येषांचैवनिर्ग्रहाः ॥

कर्तव्याःखलुरिक्तायांजयलामसुखार्थिभिः ॥ ९३

अर्थ—शत्रु चोर कर्जामांगनेवाला इनका तथा अन्य दुष्टों का निग्रह करना होवे तो इनको जो नासी खाली नाडी होवे उसहीतर्फ करै जय लाभ मुख तनकी इच्छावाले जनने ऐसेही करना ॥ ९३ ॥

दूरदेशेविधातव्यंगमनंतुहिमद्युतौ ॥

अभ्यर्णदेशेतुदीप्तेतरणावितिकेचन ॥ ९४ ॥

अर्थ—दूरदेशमें जाना होवे तो चंद्रमाके स्वरमें गमन करै और समीपदेशमें जाना होवे तो सूर्यके स्वरमें गमन करै ऐसे कितेक जन कहतेहैं ॥ ९४ ॥

यत्किंचित्पूर्वमुद्दिष्टंलाभादेश्वसमागमः ॥

तत्सर्वपूर्णनाडीषुजायतेनिर्विकल्पकं ॥ ९५ ॥

अर्थ—पहले जो [कछु] लाभ आदिका समागम कहा है वह संपूर्ण पूर्णस्वरके चलनेमें निःसंदेह होताहै ॥ ९५ ॥

शून्यनाड्यांविपर्यस्तंयत्पूर्वप्रतिपादितं ॥

जायतेनान्यथाचैवयथासर्वज्ञभाषितं ॥ ९६ ॥

अर्थ—और जो कछु पहले कहाहै वह लाभादिक खाली नाडी चलनेमें विपरीत फल देताहै यह शिवजीका कहाहु-आवचनहै सो अन्यथा नहींहोताहै ॥ ९६ ॥

व्यवहारेखलोच्चाटेद्वेषिविद्यादिवंचकः ॥

कुपितस्वामिचौराद्याःपूर्णस्थास्युर्भयंकराः ९७॥

अर्थ—व्यवहार दुष्टपुरुषका उच्चाटन शत्रु किसी विद्यासे ठग नेवाला क्रोधहुआ स्वामी चोर ये सब पूर्णस्वर चलताहै तो भय करनेवालेहैं ॥ ९७ ॥

दूराध्वनिशुभश्रंद्रोनिर्विघ्नोनष्टसिद्धिदाः ॥

प्रवेशकार्यहेतौचसूर्यनाडिप्रशस्यते ॥ ९८ ॥

अर्थ—दूर मार्गमें जानेंविषे चंद्रमाका स्वर शुभ मनोवांछित फलकी सिद्धि करताहै और प्रवेशके कार्योंमें सूर्यकी नाडी शुभ कहीहै ॥ ९८ ॥

चंद्रचारेविषहंतिसूर्यबालावशनयेत् ॥

सुषुम्णायांभवेन्मोक्षएकदेवस्त्रिधास्थितः ॥९९॥

अर्थ—चंद्रमाका स्वर चलनेके समय विषको दूरकर देवै और सूर्यका स्वर चलनेमें स्त्रीको वशमें करै सुषुम्नामें मोक्ष होताहै ऐसे ए स्वर तीन प्रकारसे स्थितहै ॥ ९९ ॥

अयोज्ञेयोज्ञतानाड्यायोज्ञेस्थानेप्ययोग्यता ॥

कार्यानुबंधनोजीवःयथारुद्रस्तथाचरेत् ॥१००॥

अर्थ—अयोग्य कार्यमें नाडीकी योग्यताहो और योग्य कार्यमें अयोग्यता हो तो उस कार्यमें यह पुरुष बंध जाताहै इसलिये जैसा स्वर चले वैसाही आचरण करना ॥ १०० ॥

शुभान्यशुभकार्याणिक्रियंतेहर्निशंयदा ॥

तदाकार्यनिरोधेनकार्यनाडीप्रचालनं ॥ १०१ ॥

अर्थ—रातिमें तथा दिनमें जैसा शुभ अशुभ कर्म किया जावे तब उस कार्यके अनुसारही नाडीका संचार करना योग्यहै ॥ १०१ ॥

प्रथमइडानाडीस्थिरकर्मण्यलंकारेदूराध्वगमनेत

था ॥ आश्रमेहर्म्यप्रासादेवस्तुनांसंग्रहेपिच१०२

अर्थ—अब इडानाडीके कार्योंको कहतेहैं. स्थिरकर्म आभूषण विवाह दूर मार्गमें जाना आश्रम हवेली मंदिर इनका कार्य तथा वस्तुओंका संग्रहमें ॥ १०२ ॥

वापीकूपतडागादिप्रतिष्ठास्तंभदेवयोः ॥

यात्रादानेविवाहेचवस्त्रालंकारभूषणे ॥ १०३ ॥

अर्थ—बावडी कूप तलाव आदि तथा देवता और स्तंभ आदिकी प्रतिष्ठामें विवाहविषे वस्त्र अलंकार आदिसे भूषित होनेमें ॥ १०३ ॥

शांतिकेपौष्टिकंचैवदिव्योषधिरसायने ॥

स्वस्वामिदर्शनेमैत्रेवाणिज्येकणसंग्रहे ॥ १०४ ॥

अर्थ—शांतिके कर्म तथा पुष्टिके कर्मोंमें दिव्य औषधी, रसायनमें अपने स्वामीके दर्शनमें मित्रतामें वणिजमें धान्य राशि करनेमें ॥ १०४ ॥

गृहप्रवेशेसेवायांकृष्यांवैबीजवापने ॥

शुभकर्मणिसंधौचनिर्गमेचशुभंशशी ॥ १०५ ॥

अर्थ—गृह प्रवेशमें सेवामें खेतीमें बीज बोवनेमें अन्य शुभ-कर्ममें मिलाप करनेमें चंद्रमाका स्वर, इडानाडी शुभहै १०५

विद्यारंभादिकार्येषुबान्धवानांचदर्शने ॥

जनमोक्षेचधर्मेचदीक्षायामंत्रसाधने ॥ १०६ ॥

अर्थ—विद्याका आरंभ बंधुजनोंका दर्शन मनुष्यका छुटना धर्मदीक्षा मंत्रसाधन ॥ १०६ ॥

कालविज्ञानसूत्रेतुचतुःपदग्रहागमे ॥ कालव्या

धिचिकित्सायांस्वामिसंबोधनेतथा ॥ १०७ ॥

अर्थ—कालका ज्ञान सूत्र, चौपाये पशुओंको घरमेंलाना कालकी व्याधिकी चिकित्सा, स्वामीका बुलाना इन सब कार्योंमेंभी इडानाडी शुभ कहीहै ॥ १०७ ॥

गजाश्वारोहणेधन्विगजाश्वानांचबंधने ॥

परोपकरणेचैवनिधीनांस्थापनेतथा ॥ १०८ ॥

अर्थ—हाथी तथा घोड़ेकी सवारीमें धनुषविद्या हाथी

और अश्वोंके बांधनेमें किसीके उपकार करनेमें द्रव्यादि
स्वजानाके स्थापन करनेमें ॥ १०८ ॥

गीतवाद्यादिनृत्यादौगीतशास्त्रविचारणे ॥

पुरग्रामनिवेशेचतिलकक्षेत्रधारणे ॥ १०९ ॥

अर्थ—गीत बाजा नृत्य आदिकोंमें गीत शास्त्रके विचार-
नेमें पुर ग्रामादिकोंमें प्रवेश समय राज्याभिषेकमें ॥ १०९ ॥

आर्तिशोकविषादेचज्वरितेमूर्छितोपिवा ॥

स्वजनस्वामिसम्बन्धेधान्यादिदारुसंग्रहे ॥ ११० ॥

अर्थ—पीडा शोक, विषाद ज्वर मूर्च्छा स्वजन तथा
स्वामी आदिकोंसे मिलना धान्य वा काष्ठआदिका संग्रह
इन सबोंमें ॥ ११० ॥

स्त्रीणांदंतादिभूषायांवृष्टेरागमनेतथा ॥

गुरुपूजाविषादीनांचालनेचवरानने ॥ १११ ॥

इडाचसिद्धिदाप्रोक्तायोगाभ्यासादिकर्मसु ॥

तत्रापिवर्जयेद्वायुंतेजआकाशमेवच ॥ ११२ ॥

अर्थ—और स्त्रियोंको दंत आदिका भूषण वर्षाका आना
गुरुकी पूजा विष आदिका उतारना. हे वरानने इस सबोंमें
इडानाडी सिद्धिको देनेवाली कहीहै और योगाभ्यास आ-
दिकोंमेंभी सिद्धि दायिनीहै तहां इडानाडीमेंभी वायुतत्त्व
और आकाशतत्त्वको वर्जि देवै ॥ १११ ॥ ११२ ॥

सर्वकार्याणिसिध्यंतिदिवारात्रिगतांन्यपि ॥ स

र्वेषुशुभकार्येषुचंद्रवारःप्रशस्यते ॥ ११३ ॥

अर्थ—दिन रात्रीमें प्राप्तभये सब काम सिद्ध होतेहैं संपू-
र्ण शुभ कार्योंमें चंद्रमाका स्वर शुभ कहाहै ॥ ११३ ॥

पिंगलाकठिनक्रूरविद्यानांपठनेतथा ॥

स्त्रीसंगवेश्यागमनेमहानौकादिरोहणे ॥ ११४ ॥

अर्थ—अब पिंगलाके कार्योंको कहतेहैं. कठिन और क्रूर मरणोच्चाटनआदि विद्याओंमें स्त्रीसंग तथा वेश्यागमनमें महा नौका अर्थात् जिहाजआदिपै चढनेमें पिंगला नाडी शुभ कहीहै ॥ ११४ ॥

भ्रष्टकार्यसुरापानेवीरमंत्राद्युपासने ॥

विव्हलोध्वंसदेशादिविषदानेचवैरिणां ॥ ११५ ॥

अर्थ—भ्रष्टकार्य मदिरापान, वीर मंत्रआदिकी उपासना विव्हलपना देशका विध्वंस वैरियोंको विषदेना ॥ ११५ ॥

शास्त्राभ्यासेचगमनेमृगयापशुविक्रये ॥

दृष्टिकाकाष्ठपाषाणेरत्नधर्षणदारणे ॥ ११६ ॥

अर्थ—शास्त्रका अभ्यास गमन सिकार खेलनें जाना पशुओंका बेचना ईंट काष्ठ पत्थर रत्न इनका घिसना तथा फोडना ॥ ११६ ॥

गत्याभ्यासेयंत्रतंत्रेदुर्गपर्वतरोहणे ॥

दूतेचौर्यगजाश्वादिरथसाधनवाहने ॥ ११७ ॥

अर्थ—गतिका अभ्यास यंत्र तंत्र किला तथा पर्वत आदिपै चढना जुवा, चोरी हाथी घोडा रथ इन वाहनोका साधन करना ॥ ११७ ॥

खरोष्ट्रमहिषादीनांगजाश्वारोहणेतथा ॥

नदीजलौघतरणेभैषजेलिपिलेखने ॥ ११८ ॥

अर्थ—गधा ऊंट भैंसाआदि तथा हात्ती घोडा आदिपै चढना नदी जलके समूहको तिरना औषधलेना लीपना लिखना. ॥ ११८ ॥

मारणेमोहनेस्तंभेविद्वेषोच्चाटनेवशे ॥

प्रेरणाकर्षणक्षोभेदानेचक्रयविक्रये ॥ ११९ ॥

अर्थ—मारण मोहन स्तंभन विद्वेषण उच्चाटन, वशीकरण, प्रेरणा आकर्षण क्रोध दान खरीदना ॥ ११९ ॥

खड्गहस्तेवैरियुद्धेभोगेवाराजदर्शने ॥

भोज्येस्नानेव्यवहारेकूरेदीप्तरविःशुभः ॥ १२० ॥

अर्थ—हाथमें तलवार लेना वैरीकेसंग युद्ध करना भोग और राजाका दर्शन भोजन करना स्नान करना क्रूर व्यवहार करना इन सब कार्योंमें सूर्यका स्वर चलना शुभहै १२०

शुक्तमात्रेणमंदाग्नौस्त्रीणां वश्यादिकर्माणि ॥

शयनंसूर्यवाहेनकर्तव्यंसर्वदाबुधैः ॥ १२१ ॥

अर्थ—भोजन करनेसे मंद अग्नीविषे प्रदीप्त अग्निकरनेमें स्त्री वशीकरणमें पिंगलानाडी शुभहै इसलिये, बुद्धिमान् जनोंने यह संपूर्ण कार्य सूर्यके स्वरमें करना ॥ १२१ ॥

क्रूराणिसर्वकर्माणिचराणिविविधानिच ॥

तानिसिध्यंतिसूर्येणनात्रकार्याविचारणा ॥ १२२ ॥

अर्थ—अनेक प्रकारके जो क्रूरकर्म हैं और जो अनेक चरकर्महैं वे संपूर्ण सूर्यके स्वरमें सिद्ध होतेहैं इसमें कछु विचार नहीं करना ॥ १२२ ॥

॥ अथसुषुम्णालक्षणम् ॥

वामेक्षणंक्षणंदक्षेयदावहतिमारुतः ॥

सुषुम्णासाचविज्ञेयासर्वकार्यहरास्मृता ॥ १२३ ॥

अर्थ—अब सुषुम्णाके लक्षण कहतेहैं. जब क्षणमात्रमें बायां और क्षणमात्रमें दाहिना स्वर वहै तब वह सुषुम्णा

नाडी जाननी यह सब कार्यको हरनेवाली कही है ॥१२३॥

तस्यांनाड्यांस्थितोवन्दिज्वलंतंकालरूपतः ॥

विषवत्तंविजानीयात्सर्वकार्यविनाशनं ॥१२४॥

अर्थ—तिस नाडीमें स्थित हुआ अग्नितत्त्व कालरूपसे
ज्वलित रहताहै उसको संपूर्ण कार्योका नाशक विषवाला
अग्नि जानना ॥ १२४ ॥

यदानुक्रममुलंघ्ययस्यनाडिद्वयंवहेत् ॥

तदातस्यविजानीयादशुभंनात्रसंशयः ॥१२५॥

अर्थ—जब जिस पुरुषकी दोनों नाडी अपने २ यथाक्रमको
उलंघके वहतीहैं तब उसको अशुभ फल जानों
इसमें कछु संशय नहीं ॥ १२५ ॥

क्षणंवामेक्षयंवायुर्विषमंभावमादिशेत् ॥

विपरीतफलंज्ञेयंज्ञातव्यंचवरानने ॥१२६॥

अर्थ—जो यदि वायु क्षणमात्रही बायें स्वरमें वहके नष्ट
होजावे यह विषमभाव कहताहै हेवरानने, तहां विपरीत फल
जानना ॥ १२६ ॥

उभयोरेवसंचारंविषुवंतंविदुर्बुधाः ॥

नकुर्यात्क्रूरसौम्यानितत्सर्वंनिफलंभवेत् ॥१२७॥

अर्थ—बुद्धिमान् जन दोनों नाडियोंके एकवार संचार-
को विषवान् कहतेहैं तहां क्रूर तथा सौम्य किये हुए सब
कर्म निष्फल होतेहैं ॥ १२७ ॥

जीवतेमरणेप्रश्नेलाभालाभौजयाजयौ ॥

विषमेविपरीतेवासंस्मरेज्जगदीश्वरं ॥१२८॥

अर्थ—जीवना मरना प्रश्न लाभ हानि जय हार विषम

तथा विपरीत स्वर इन सबोंमें ईश्वरका स्मरण करना चाहिये ॥ १२८ ॥

ईश्वरेचिततेकार्ययोगाभ्यासादिकर्मसु ॥

अन्यत्रतुनकर्तव्यंजयलाभसुखेषुभिः ॥ १२९ ॥

अर्थ—योगाभ्यासादि कर्मोंमें ईश्वरविषे कार्य चितवन-
किये पीछे तहां जय लाभ सुखकी इच्छावाले जनोंको अन्य
कछु कर्त्तव्य नहींहै ॥ १२९ ॥

सूर्येणवहमानायांसुषुम्णायांसुहुर्मुहुः ॥

शापंदद्याद्वरंदद्यात्सर्वथाचरदन्यथा ॥ १३० ॥

अर्थ—सूर्य करके जब वारंवार सुषुम्णानाडी वहती होय
तब शापदो अथवा वरदो वह सब विपरीत होताहै ॥ १३० ॥

नाडिसंक्रमणेकालेतत्त्वसंक्रमणे तथा ॥

शुभंकिंचिन्नकर्तव्यंपुण्यदानादिकंशुभम् ॥ १३१ ॥

अर्थ—नाडियोंके संचलन परस्पर मेलमें और तत्त्वोंके
संचलनमें, कच्छु शुभकर्म न करै और पुण्य दानआदि क-
भी न करना ॥ १३१ ॥

विषमस्योदयेयत्रमनसापिनचितयेत् ॥

यात्राहानिकरीतस्यमृत्युःक्लेशोनसंशयः ॥ १३२ ॥

अर्थ—विषम स्वर चलताहो तब किसी कार्यको मनसेभी
चितवन नकरै तिस पुरुषको यात्रा हानी करनेवाली होतीहै
मृत्यु अथवा क्लेश होताहै इसमे संदेह नहीं ॥ १३२ ॥

पुरोवामोर्द्धतश्चंद्रोदक्षाधःपृष्ठितोरविः ॥

पूर्णरिक्तविवेकोयंज्ञातव्योदैशिकैःसदा ॥ १३३ ॥

अर्थ—चंद्रमाके स्वरका वेग तो सन्मुख वा वार्येतर्फ तथा

ऊपरको होवे और सूर्यके स्वरका प्रहर पिछेको वा दहिनी तर्फ वा नीचेको होवे तो यह पूर्ण विवेक है इससे विपरीत प्रवाहमें पंडितजनोंने सदैव रिक्त, खाली जानना ॥ १३३ ॥

उर्ध्ववामाग्रतोदूतोज्ञेयोवामपथिस्थितः

पृष्टेदक्षेतथाधस्थःसूर्यवाहागतःशुभः ॥ १३४ ॥

अर्थ—चंद्रमाके स्वर चलते समय ऊपरकी तर्फ वा बायीं तर्फ तथा आगेको बैठाहु आ दूत शुभहै सूर्यके स्वर चलते समय पीठ पीछे दहिने वा नीचेको बैठाहु आ दूत शुभहै ॥ १३४ ॥

अनादिर्विषमःसंधिर्निराहारोनिराकुलम् ॥

परेसूक्ष्मेविलीयेतसासंध्यासद्भिरुच्यते ॥ १३५ ॥

॥ इतिनाडिभेदः ॥

अर्थ—अनादि विषम संधिजो सुषुम्णानाडी है सो निराहार निराकुल हुई सूक्ष्मकत्वविषे लीनहोजावे तब सज्जनोंने वह संध्यासमय कही है ॥ १३५ ॥ यहां नाडी भेद समाप्त.

॥ देव्युवाच “ देवदेवमहादेवसर्वसंसारतारक ॥

स्थितंत्वदीयेहृदयेरहस्यंवदमेप्रभो ॥ १३६ ॥

अर्थ—पार्वती देवी पूछती भई. हे देवदेव महादेव हे संसारतारक आपके हृदयमें जो रहस्य वस्तु है उसको मेरे आगे कहो ॥ १३६ ॥

॥ ईश्वरउवाच ॥ स्वरज्ञानरतोयोगीसयोगीपरमो

मतः॥पंचतत्वाद्भवेत्सृष्टिस्तत्वेतत्वंविलीयते १३७

अर्थ—शिवजी कहने लगे. हे देवी जो स्वरके ज्ञानमें रत योगीहै वही योगी श्रेष्ठहै सृष्टी पंचतत्त्वोंसेही तत्त्वमेंही तत्त्व लीन हो जातेहै ॥ १३७ ॥

तत्त्वानानामविज्ञेयसिद्धियोगेनयोगिनां ॥

भूतानांदुष्टचिन्हानिजानन्तिचस्वरोत्तमः॥१३८॥

अर्थ—इसालिये, योगीजनोंने सिद्धयोग करके तत्त्वोंका नाम जानना योग्यहै उत्तम स्वर ज्ञानी पुरुष भूतोंके दुष्ट चिन्होंको जानताहै ॥ १३८ ॥

पृथिव्यापस्तथातेजोवायुराकाशमेवच ॥

पंचभूतात्मकंसर्वंयोजानातिसंपूजितः ॥१३९॥

अर्थ—पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश ऐसे इन पांच तत्त्वोंका आत्मभूत विश्वको जो जानताहै वह पूजितहै १३९

सर्वलोकस्यजीवानांनदेहोतत्त्वभिन्नकः ॥

भूलोकात्सत्यपर्यंतंनाडिभेदंपृथक्पृथक् ॥१४०॥

अर्थ—संपूर्ण लोगोंका देह तत्त्वोंसे भिन्न नहींहै भूलोकसे सत्यलोकपर्यंत सबका शरीर पंचतत्त्वात्मक है परंतु नाडीका भेद अलग रहै ॥ १४० ॥

वामेवादक्षिणेवापिउदयात्पंचकीर्तितं ॥

अष्टधातत्त्वविज्ञानंशृणुवक्ष्यामिसुंदरि ॥१४१॥

अर्थ—बायें अथवा दाहिने स्वरमें पांचतत्त्व उदय कहेहैं हे सुंदरि, तिन तत्त्वोंका विज्ञान आठ प्रकारसे सूनों में कहताहूं ॥ १४१ ॥

प्रथमेतत्त्वसंख्यानांद्वितीयेश्वाससंधयः ॥

तृतीयेस्वरचिन्हानिचतुर्थेस्थानमेवच ॥१४२॥

अर्थ—प्रथम भेदतत्त्वोंकी संख्या दूसरा भेदश्वासकी सं-
धी तीसरा भेदस्वरोंके चिन्हहै चौथे भेदविषे स्वरोंका स्था-
न जानना ॥ १४२ ॥

पंचमेतस्यवर्णश्चषष्ठेप्राणमेवच ॥

सप्तमेस्वादसंयुक्तःअष्टमेगतिलक्षणं ॥ १४३ ॥

अर्थ—पांचवें भेदमें तिसका वर्ण छठेमें प्राण और सात-
वेंमें स्वादका संयोग और आठवें भेदमें स्वरकी गतिका
लक्षण ॥ १४३ ॥

एवमष्टविधंप्राणंविषुवंतंचराचरं ॥

स्वरात्परतरंदेविनान्यथात्वंबुजानने ॥ १४४ ॥

अर्थ—ऐसे आठ प्रकारका प्राण चराचर जगत्में व्यापक
है हे देवि हे कमलनेत्रे स्वर ज्ञानसे अन्यज्ञान (अधिक)
नहीं है ॥ १४४ ॥

निरीक्षितव्यंयत्नेनयदाप्रत्यूषकालतः ॥

कालस्यवंचनार्थायकर्मकुर्वतियोगिनः ॥ १४५ ॥

अर्थ—प्राप्त कालसे आदि ले सदैव यत्न करके स्वर
देखना क्योंकि योगीजन कालको हटानेके बास्ते यह स्व-
रका कर्म करतेहैं ॥ १४५ ॥

श्रुत्योरंगुष्ठकौमध्यांगुल्यौनासापुटद्वये ॥

वदनप्रांतकेचान्यांगुलींदद्याच्चनेत्रयोः ॥ १४६ ॥

अर्थ—कानोंमें दोनों अंगूठे देने और दोनों नासिकाके
पुटोंमें मध्यकी दो अंगूली और मुखप्रांत, होठोंके बीचमें
अन्य तर्जनी अंगुलीको और अन्य दो अंगुलीयोंको नेत्रोंमें
लगाके ॥ १४६ ॥

अस्यांतस्तुपृथिव्यादितत्त्वज्ञानंभवेत्क्रमात् ॥

पीतश्चेतारुणश्यामैर्विंदुभिर्निरुपाधिभिः ॥ १४७ ॥

अर्थ—फिर इस समाधिके बीचमें क्रमसे पृथ्वी आदि
तत्त्वोंका ज्ञान होताहै उपाधि रहित पृथ्वी १ पीत जल २

श्वेत तेज ३ लाल वायु ४ कालाबिंदूरूप वर्ण पृथ्वि आदि
कोंका दिखताहै आकाशका चित्रविचित्र वर्ण दिखताहै १४७

दर्पणेनसमालोक्यतत्रश्वासंचनिःक्षिपेत् ॥

आकारैस्तुविजानीयात्तत्त्वभेदंविचक्षणः॥१४८॥

अर्थ—पंडितजन ऐसे समाधि त्याग, दर्पणमें मुखको
देख श्वासको छोड़ै फिर इन आकारोंसे पृथ्वी आदि
तत्त्वोंका पहिचानें ॥ १४८ ॥

चतुरस्रचार्द्धचंद्रत्रिकोणंवर्तुलंस्मृतं ॥

बिंदुभिस्तुनभोज्ञेयासाकारैस्तत्त्वलक्षणं ॥१४९॥

अर्थ—चतुरस्र, त्रिकोण गोल, ऐसी बिंदुओंके आकार
दिखनेसे आकाशतत्त्वका लक्षण जानना ॥ १४९ ॥

मध्येपृथ्वीअधश्चापश्चोर्ध्वेवहतिचानलः ॥

तिर्थग्वायुप्रवाहश्चनभोवहतिसंक्रमे ॥ १५० ॥

अर्थ—मध्यमें पृथ्वी और नीचेको जल तथा ऊपरको
अग्निस्वर वहताहै और वायुका तिरछा स्वर वहता है और
दोनों स्वर मिलेहुए चलतेहों तो आकाशका स्वर जानना १५०

आपःश्वेताक्षितिःपीतारक्तवर्णोहुताशनः ॥

मारुतोनीलजीमूतआकाशःसर्ववर्णके ॥ १५१ ॥

अर्थ—जल श्वेतवर्णहै पृथ्वी पीलावर्णवालीहै अग्नी लाल-
वर्णवालाहै वायु नीला मेघके समान वर्णवालाहै आकाश
विचित्रवर्णवालाहै ॥ १५१ ॥

स्कंधद्वयेस्थितोवन्दिर्नाभिमूलेप्रभंजनः ॥

जानुदेशेक्षितितोयंपादांतेमस्तकेनभः ॥ १५२ ॥

अर्थ—अग्नि दोनों कंधोंपर स्थितहै वायु नाभिके मूलमें

स्थितहै पैरोंके अंतमें जल स्थितहै और आकाश मस्तकमें स्थितहै ॥ १५२ ॥

माहेयंमाधुरंस्वादंकषायंजलमेवच ॥

तित्तंतेजःसमीरोम्लआकाशःकटुकंतथा १५३॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्वका मधुर स्वादहै जल कसैलाहै अग्नि तत्त्व कडुवाहै वायुतत्त्व खट्टाहै आकाश कटुक मिरचसरी-स्वा चर्चरा स्वादवालाहै ॥ १५३ ॥

अष्टांगुलंवहेद्रायुरनलश्रुतुरंगुलः ॥

द्वादशांगुलमाहेयंषोडशांगुलवारुणः ॥ १५४ ॥

अर्थ—वायुका स्वर आठ अंगुल वहताहै अग्नि स्वर चार अंगुल वहताहै पृथ्वीतत्त्व बारह अंगुलतक वहताहै जलका स्वर सोलाह अंगुल वहताहै ॥ १५४ ॥

ऊर्ध्वमृत्युरधःशांतितिर्यगुच्चाटनंतथा ॥

मध्येस्तंभंविजानीयात्सर्वत्रनभमध्यमम् ॥ १५५ ॥

अर्थ—ऊपरके स्वर चले तो मृत्यु नीचेको चले तो शांति तिरछा चले तो उच्चाटन मध्यमें स्वर चले तो स्तंभ रोकना ये कार्य करने और आकाशतत्त्व सब तर्फसे मध्यमहै १५५

पृथिव्यांस्थिरकर्माणिचरकर्माणिवारुणे ॥

तेजसिकूरकर्माणिमारणोच्चाटनेनिले ॥ १५६ ॥

अर्थ—पृथ्वीके स्वरमें स्थिरकर्म और जलके स्वरमें चर-कर्म करै अग्नितत्त्वमें क्रूरकर्म और मारण उच्चाटन, कर्म वायुतत्त्वमें करै ॥ १५६ ॥

व्योम्निकिंचिन्नकर्तव्यमभ्यसेद्योगसेवनम् ॥

शून्यतासर्वकार्येषुनात्रकार्याविचारणा ॥ १५७ ॥

अर्थ—आकाशतत्त्वके स्वरमें कछु शुभऽशुभ कार्य न करै किंतु योग सेवनका अभ्यास करै इस तत्त्वमें सब कार्योंमें शून्यता होतीहै इसमें कछु विचार न करना ॥ १५७ ॥

चिरंलाभेक्षितेर्ज्ञेयस्तत्क्षणात्तोयतत्त्वतः ॥ हानि
स्थावन्निवाताभ्यां नभसोनिः फलो भवेत् ॥ १५८ ॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्व वहता हो तो चिरकालमें लाभहो जलतत्त्वमें तात्काल सिद्धि होतीहै अग्नि और वायु तत्त्वमें हानि, आकाशतत्त्वमें निष्फल कार्य जानना ॥ १५८ ॥

पीतः शनैर्मध्यवाही हनुर्यावद्गुरुध्वनिः ॥
कवोष्णः पार्थिवो वायुः स्थिरकार्यप्रसाधकः १५९

अर्थ—पीतवर्ण और शनै २ तथा मध्यम चलनेवाला ठोड़ीपर्यंत भारा शब्दवाला कछुक गरम २ ऐसा पृथ्वीका स्वरस्थिर कार्यको सिद्धकरनेवाला कहाहै ॥ १५९ ॥

अधोवाही गुरुध्यानः शीघ्रगः शीतलः सितः ॥
यः षोडशांगुलो वायुः स आपः शुभकर्मकृत् १६० ॥

अर्थ—नीचेको वहनेवाला भाराशब्दवाला शीघ्रचलनेवाला शीतल सफेदवर्णवाला और सोलह अंगुलपर्यंत जिसका प्रवाह हो ऐसा जलतत्त्वका स्वर स्थिर कार्यको सिद्धकरनेवाला कहाहै ॥ १६० ॥

आवर्तगश्चात्युष्णश्च शोणभश्चतुरंगुलः ॥
ऊर्ध्ववाही चयः क्रूरकर्मकारी स तैजसः ॥ १६१ ॥

अर्थ—भौं हरीखाके चलनेवाला लालवर्णवाला चार अंगुलतक उपरको प्रवाहवाला ऐसा अग्नितत्त्वका स्वर क्रूर-कर्मोंको करनेवाला कहाहै ॥ १६१ ॥

उष्णः शीतिः कृष्णवर्णः तिर्यग्गामी चाष्टांगुलः ॥

वायुःपवनसंज्ञोयंचरकर्मसुसिद्धिदः ॥ १६२ ॥

अर्थ—जो गरम और टंडाहो कृष्णवर्णहो आठ अंगुलतक तिरछा चले ऐसा यह वायुका स्वर चरकर्मोविषे सिद्धिदा-यकहै ॥ १६२ ॥

यःसमीरंसमरसःसर्वतत्त्वगुणावहः

अंबरंतंविजानीयाद्योगीनांयोगदायकं १६३

अर्थ—जो स्वर समान रसहो और सब तत्त्वोंके गुणको वहै वह आकाशस्वर होताहै वही योगियोंको योगका दाताहै १६३

तथापीतःश्रुतुःष्कोणंमधुरंमध्यमाश्रितं ॥

भोगदंपार्थिवंतत्त्वंप्रवाहेद्वादशांगुलं ॥ १६४ ॥

अर्थ—पितवर्णवाला तथा चतुष्कोण होवे मधुरहो मध्यमें वहताहो बारह अंगुलतक जिसका प्रवाहहो ऐसा पृथ्वीका तत्त्व भोगदेनेवालाहै ॥ १६४ ॥

श्वेतमर्द्धेदुसंकाशंस्वादुःकाषायमार्द्रकं ॥

लाभकृद्धारुणंकृत्वंप्रवाहेषोडशांगुलं ॥ १६५ ॥

अर्थ—सफेद आधाचंद्रमाके समान आकारवाला कसैला, गीला ऐसा वरुणका तत्त्व लाभकार कहै वह सोलह अंगुल पर्यंत प्रवाहवालाहै ॥ १६५ ॥

नीलंचवर्तुलाकारंस्वादुम्लंतिर्यगाश्रितं ॥

चपलंमारुतंतत्त्वंप्रवाहेष्टांगुलंस्मृतं ॥ १६६ ॥

अर्थ—नीलवर्ण गोल आकार स्वादुसहित खटा तिरछा चलनेवाला चपल आठ अंगुल प्रवाहवाला ऐसा वायुका स्वर जानना ॥ १६६ ॥

वर्णाकारंस्वादुवाहंअव्यक्तंसर्वगामिनां ॥

मोक्षदंनाभसंतत्वंसर्वकार्येषुनिःफलं ॥ १६७ ॥

अर्थ—जिसके वर्णआकार स्वाद ये प्रकट नहींहों ऐसे आकाशतत्त्वको मोक्षको देनेवालेको पहिचाने यह सब कार्यो में निष्फलहै ॥ १६७ ॥

पृथ्वीजलेशुभेतत्वेतेजोमिश्रफलोदयं ॥

हानिमृत्युकरोपुंसामशुभौव्योममारुतौ ॥१६८॥

अर्थ—पृथ्वी और जल ये दोनों तत्त्व शुभहै अग्नितत्त्व मध्यमफल देताहै और आकाश तथा वायुतत्त्व पुरुषोंकि हानि तथा मृत्यु करनेवाले है ॥ १६८ ॥

आपूर्वैपश्चिमेपृथ्वीतेजश्चदक्षिणे तथा ॥

वायुश्चोत्तरदिग्ज्ञेयोमध्यकोणगतंनभः ॥ १६९ ॥

अर्थ—पूर्वसे लेके पश्चिमतक पृथ्वीतत्त्वहै अग्नितत्त्व दक्षिण दिशामें जानना आकाशतत्त्व मध्यकोणमें जानना ॥ १६९ ॥

चंद्रेपृथ्वीजलेस्यातांसूर्येचाग्निर्यदाभवेत् ॥

तदासिद्धिर्नसंदेहोसौम्यासौम्येषुकर्मसु ॥१७०॥

अर्थ—चंद्रमाके स्वरविषे पृथ्वी और जलतत्त्व वहताहो सूर्यके स्वरमें अग्नितत्त्व वहताहो तब सौम्य और क्रूर कर्मो-विषे सिद्धि जाननी इसमें संदेह नहीं ॥ १७० ॥

लाभपृथ्वीकृतोस्यान्दिशायांलाभकृज्जलं ॥

वन्हौमृत्युःक्षयंवायौनभस्थानंदहेत्क्वचित् ॥१७१॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्व चले तो दिनमें लाभ होवे रात्रीमें जल-तत्त्व चले तो लाभ होय अग्नितत्त्वमें मृत्यु वायुतत्त्वमें क्षय और आकाशतत्त्वमें कभी स्थानका दाहभी होजाताहै १७१

जीवितव्येजयेलाभेकृष्यांचधनकर्मणि ॥

मंत्रार्थेयुद्धप्रश्लेषगमनागमनेतथा ॥ १७२ ॥

आयातिवारुणेतत्वेतत्रशत्रुःशुभक्षितौ ॥

प्रयातिवायुतोन्यत्रहानिमृत्युनभोनले ॥ १७३ ॥

अर्थ—जीवन, जय लाभ रेवती धनका कर्म मंत्र युद्ध, गमन आगमन इन कार्योंमें जलतत्त्व चलता हो तो शत्रुका आगमन जानै पृथ्वीतत्त्व चलता हो तो शुभफल होय वायु तत्त्व होय तो शत्रु अन्यजगंह चलाजाय आकाश और अग्नि तत्त्व होय तो हानी तथा मृत्यु होय ॥ १७२ ॥ १७३ ॥

पृथिव्यामूलचिंतास्यात्जीवस्यजलवातयोः ॥

तेजसिधातुचिंतास्यात्शून्यमाकाशतोवदेत् १७४

अर्थ—पृथ्वीतत्त्वमें मूलचिंता जाननी जल तथा वायुतत्त्वमें जीवचिंता अग्नितत्त्व चलता हो तो धातुचिंता कहनी आकाशतत्त्व होय तो, शून्य कछु चिंता नहींहै ऐसा जानना ॥ १७४ ॥

पृथिव्यांबहुपादास्युर्द्धिपदस्तायेवायुतः ॥

तेजसिचचतुष्पादोनभसिपादवर्जितः ॥ १७५ ॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्व चलता होय तो बहुत पैरवालोंकी चिंता जाननी जलतत्त्वमें दो पैरवाले जीवकी चिंता जलतत्त्वमें चौपाये पशुकी चिंता और आकाशतत्त्वमें पैर रहित वस्तुकी चिंता जानना ॥ १७५ ॥

कुजोवन्हीरविःपृथ्वीसौरीरायःप्रकीर्तितः ॥

वायुस्थानस्थितोराहुर्दक्षरंध्रप्रवाहकाः ॥ १७६ ॥

अर्थ—दक्षिण स्वरके प्रवाहविषे अग्नितत्त्वमें मंगल और पृथ्वीतत्त्वमें सूर्य जलतत्त्वमें शनिश्चर और वायुतत्त्वमें राहु जानना ॥ १७६ ॥

जलंचंद्रोबुधःपृथ्वीगुरुर्वातःसितोनलः ॥

वामनाड्यांस्थिताःसर्वेसर्वकार्येषुनिश्चितां १७७

अर्थ—और बायां स्वर चलता हो तब जलतत्त्वमें चंद्रमा पृथ्वीतत्त्वमें बुध वायुमें बृहस्पति अग्नितत्त्वमें शुक्र जानना ये सब ग्रह संपूर्ण कार्योंमें इसी प्रकारसे इन तत्त्वोंमें निश्चय रहतेहैं ॥ १७७ ॥

प्रवासिप्रश्नआदित्येयदिराहुर्गतानिले ॥

तदासौचलितोज्ञेयःस्थानान्तरमपेक्षिते ॥ १७८ ॥

अर्थ—कोई परदेशमें गयाहो उसका प्रश्न करे तहां प्रश्न समय सूर्यके स्वरमें राहु स्थित होवे तो वह परदेशी पुरुष पहिले स्थानसे चलदिया और दूसरी जगह गया चाहताहै ऐसा जानना ॥ १७८ ॥

आयातिवारुणेतत्वेतन्नेवास्तिशुभंक्षितौ ॥

प्रवासीपवनेन्यत्रमृत्युरेवानलेवदेत् ॥ १७९ ॥

अर्थ—और जलके तत्त्व चलते समय प्रश्न करै तो परदेशी शीघ्रही आवे पृथ्वीतत्त्वमें शुभ फलहै वायुतत्त्व हो परदेशी अन्यजगह गया जानना अग्नितत्त्वमें मृत्यु जाननी इसमें संदेह नहींहै ॥ १७९ ॥

पार्थिवेमूलविज्ञानंजीवज्ञानंजलेतथा ॥

आग्नेयांधातुविज्ञानंव्योमिशून्यंविनिर्दिशेत् १८०

अर्थ—पृथ्वीतत्त्वमें मूलचिंता जाननी जलतत्त्वमें जीवचिंता अग्नितत्त्वमें धातुचिंता आकाशतत्त्वमें सून्य कछु चिंता न जाननी ॥ १८० ॥

तुष्टिपुष्टीरतिक्रीडाजयहास्यधराजले ॥

तेजोवायोश्चसुप्ताख्योज्वरकंपःप्रवासिनः॥१८१॥

अर्थ—परदेशीके प्रश्नसमय पृथ्वी वा जलतत्त्व होवे तो

तुष्टि पुष्टि रमण क्रीडा विजय हास्य यह फलहै अग्नि वा वायुतत्त्व होवे तो सुस्ती आदि रोग ज्वर कंप ये परदेशीकै जानने ॥ १८१ ॥

गतायुर्मृत्युराकाशेतत्वस्थानेप्रकीर्तिताः ॥

द्वादशैताःप्रयत्नेनज्ञातव्यादैशिकैःसदा ॥१८२॥

अर्थ—आकाशतत्त्वमें आयुरहित परदेशीकी मृत्यु कहना ऐसे ये बारह प्रश्न स्वरोदयके देशकालको जाननेवालोंने यतनसे तत्त्वोंके स्थानपर कहेहैं ॥ १८२ ॥

पूर्वायांपश्चिमेयाम्येउत्तरस्यांयथाक्रमं ॥

पृथिव्यादीनिभूतानिबलिष्ठानिविनिर्दिशेत् १८३

अर्थ—पूर्व, पश्चिम दक्षिण उत्तर इन दिशाओंमें पृथ्वी आदितत्त्व यथाक्रमसे बलिष्ठ कहेहैं ॥ १८३ ॥

पृथिव्यापःस्तथातेजोवायुराकाशमेवच ॥

पंचभूतात्मकोदेहोज्ञातव्यश्चवरानने ॥ १८४ ॥

अर्थ—हेवरानने, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश ऐसे क्रमसे कहै इन पांचतत्त्वोंकाही शरीर जानना ॥ १८४ ॥

अस्थिमांसंत्वचानाडीरोमंचैवतुपंचमं ॥

पृथ्वीपंचगुणाप्रोक्ताब्रह्मज्ञानेनभाषितं ॥ १८५ ॥

अर्थ—हड्डी मांस त्वचा नाडी पांचवा रोम ऐसे इन पांच गुणोंवाली पृथ्वी कहीहै यह ब्रह्मज्ञानियोंका कथनहै ॥ १८५ ॥

शुक्रशोणितमज्जाश्रूमूत्रंलालंचपंचमम् ॥

आपःपंचगुणाःप्रोक्ताब्रह्मज्ञानेनभाषितम् ॥ १८६ ॥

अर्थ—वीर्य शोणित, स्त्रीका रज, मज्जा मूत्र पांचवा लाल ये पांच गुण जलकेहैं ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंका कथनहै ॥ १८६ ॥

क्षुधातृषातथानिद्राकांतिरालस्यमेवच ॥

तेजःपंचगुणंप्रोक्तंब्रह्म० ॥ १८७ ॥

अर्थ—क्षुधा, तृषा, निद्रा कांति, आलस्य ये पांच गुण अग्निके है ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंका कथनहै ॥ १८७ ॥

धावनंचलनंगंधसंकोचनप्रसारणे ॥

वायोःपंचगुणाःप्रोक्ताब्रह्म० ॥ १८८ ॥

अर्थ—भाजना चलना, गंध, सुकडना फैलना ये पांच गुण वायुकेहै ॥ १८८ ॥

रागद्वेषस्तथालज्जाभयमोहश्चपंचमः ॥

नभपंचगुणंप्रोक्तंब्रह्मज्ञानेनभाषितं ॥ १८९ ॥

अर्थ—रागद्वेष लज्जा भय, पांचवा मोह ये पांचगुण आकाशके है ऐसा ब्रह्मज्ञानियोंका कथनहै ॥ १८९ ॥

भूम्याःपलानिपंचाशच्चत्वारिंशदपस्तथा ॥

अग्नेस्त्रिंशत्पुनर्वायोर्विंशतिर्नभसोदश ॥ १९० ॥

अर्थ—शरीरमें पृथ्वी पचाश पल प्रमाणहै जल ४० पल है अग्निका तीस पल प्रमाणहै वायु बीस पल और आकाश दश पल प्रमाणहै ॥ १९० ॥

पार्थिवेचिरकालेचलाभश्चापक्षणाद्भवेत् ॥

जायतेपवनात्स्वल्पःसिद्धयोथग्नौविनश्यति १९१

अर्थ—पृथ्वीतत्त्वमें बहुत कालमें लाभ होवे जलतत्त्वमें तात्काल वायुमें स्वल्प लाभ अग्नितत्त्वमें सिद्धहुआ कार्य-भी नष्ट हो जाताहै ॥ १९१ ॥

पृथ्व्याःचअपांदागुणास्तेजोवेद्विवायुतः ॥

नभएकगुणंचैवतत्त्वज्ञानमिदंभवेत् ॥ १९२ ॥

अर्थ—पृथ्वीके रूप, आदि, पांचगुणहैं जलके चार गुणहैं अग्निके दो गुण और आकाश एकही गुणवाला है ऐसे यह तत्त्वज्ञानहै ॥ १९२ ॥

फूत्कारकृत्प्रस्फुटिताविदीर्णापतिताधरा ॥

ददातिसर्वकार्येषुअवस्थाशद्वसंफलं ॥ १९३ ॥

अर्थ—फूत्कार करनेवाली फूटी हुई फटीहुई गिरीहुई ऐसी पृथ्वी है सो सब कार्योंमें अवस्थाके सदृश फल देतीहै १९३

धनिष्ठारोहिणीज्येष्ठानुराधाश्रवणस्तथा ॥

अभिजीच्चोत्तराषाढापृथ्वीतत्त्वमुदाहृतम् ॥ १९४ ॥

अर्थ—धनिष्ठा रोहिणी ज्येष्ठा अनुराधा श्रवण अभिजित् उत्तराषाढा ये नक्षत्र पृथ्वीतत्त्वहैं ॥ १९४ ॥

पूर्वाषाढातथाश्लेषामूलमार्द्राचरेवती ॥

उत्तराभाद्रपदाचैवजलंशतभिषाप्रिये ॥ १९५ ॥

अर्थ—हे प्रिये, पूर्वाषाढा आश्लेषा मूल आर्द्रा, रेवती उत्तरा भाद्रपदा शतभिषा ये जलतत्त्वहैं ॥ १९५ ॥

भरणीकृत्तिकापुष्येमघापूर्वाचफल्गुनी ॥

पूर्वाभाद्रपदास्वातीतेजस्तत्वमितिप्रिये ॥ १९६ ॥

अर्थ—हे प्रिये भरणी कृत्तिका पुष्य मघा पूर्वाफाल्गुनी पूर्वाभाद्रपदा स्वाती ये अग्नितत्त्वहैं ॥ १९६ ॥

विशाखोत्तरफल्गुन्यौहस्तचित्रेपुनर्वसु ॥

अश्विनीमृगशीर्षेचवायुस्तत्वमुदाहृतं ॥ १९७ ॥

अर्थ—विशाखा उत्तराफाल्गुनी हस्त चित्रा पुनर्वसु अश्विनी मृगशिर ये वायुतत्त्व कहतेहैं ॥ १९७ ॥

वहन्नाडीस्थितोदृतोयत्पृच्छतिशुभाशुभं ॥

तत्सर्वसिद्धिदंप्रोक्तंशून्येशून्येनसंशयः ॥ १९८ ॥

अर्थ—जो नासास्वर चलताहो उसीतर्फ कोई दूत आयकेबैठे
अथवा जो शुभांशुभफल पूछे वह संपूर्ण सिद्ध होता है और
शून्यनाडीकीतर्फ बैठे शून्यफलजानना इसमेंसंदेहनहीं ॥ १९८ ॥

तत्वेरामोजयंप्राप्तःसुतत्वेचधनंजयः ॥

कौरवानिहताःसर्वयुद्धेतत्त्वविपर्यतः ॥ १९९ ॥

अर्थ—शुभतत्त्वमें रामचंद्र विजयपाये शुभतत्त्वमेंहीं अर्जुन
विजयपाये और तत्त्वोंकेही विपरीतसे सब कौरव युद्धमें
मारेगये ॥ १९९ ॥

जन्मांतरायसंस्कारात्प्रसादादथवागुरोः ॥

केनविज्ञायतेतत्त्वेवासनातिमलात्मना ॥ २०० ॥

अर्थ—पूर्वजन्मके संस्कारसे अथवा गुरुकी प्रसन्नतासे
कीन्हींक शुद्ध अंतःकरणवालोंको तत्त्वज्ञानकी वासना बोध
होता है ॥ २०० ॥

॥ अथपंचतत्त्वध्यानं ॥

लंबीजंधरणीध्यायेचतुरस्रंतुपीतभं ॥

सुगंधंस्वर्णवर्णत्वंआरोग्यंदेहलाघवं ॥ २०१ ॥

अर्थ—लं, ऐसाबीजको पृथ्वी तत्त्वरूप ध्यान करै पृथ्वीको
चकोर और पीतवर्णवाली चितवनकरै और सुंदर गंधयुक्त
तथा सुवर्णसरीखी कांतिका ध्यान करै ॥ ऐसे इसका ध्यान
करने वालेको शरीरके हलकापनकी प्राप्ति होती है ॥ २०१ ॥

वंबीजंवारुणंध्यायेत्अर्धचंद्रंशशिप्रभं ॥

क्षुत्तृषादिहिमुख्यत्वंजलमध्येचमज्जनं ॥ २०२ ॥

अर्थ—वं, ऐसे इस बीजको जलतत्त्वरूप ध्यावे और
आधाचंद्रमाके समान आकारवालो ध्यावै ऐसे इसका ध्यान

करे इसका ध्यान करनेवाला पुरुष क्षुंघा तृषाको सहै जलमें
गोतामार डूबके रहनेकी सामर्थ्यवाला होवे ॥ २०२ ॥

रंबीजंशिखिनंध्यायेत्रिकोणमरुणप्रभं ॥

बव्हन्नपानभोक्तृत्वंमातयाग्निसहिष्णुता ॥ २०३ ॥

अर्थ—रंबीजको अग्निसे उत्पन्नहुवेको त्रिकोण और
लालवर्णवालेको ध्यावे इससे बहुत खानापिना घाम अग्नि
आदिका सहना हो सकताहै ॥ २०३ ॥

यंबीजंपवनंध्यायेद्वर्तुलंशामलप्रभं ॥

आकाशगमनाद्यंचपक्षिवद्गमनंतथा ॥ २०४ ॥

अर्थ—यं यह बीज वायुतत्त्वमें ध्यान करनेको योग्यहै
गोल और श्यामवर्णवालाहै इससे आकाशमें गमन आदी प-
क्षीकी तरह उडना आदी होसकताहै ॥ २०४ ॥

हंबीजंगगनंध्यायेनिराकारंबहुप्रभं ॥

ज्ञानंत्रिकालविषयमैश्वर्यमणिमादिकं ॥ २०५ ॥

अर्थ—हं, इस बीजको आकाशतत्त्वमें निराकार और बहुत
कांतिवालेको ध्यावे इसके अभ्याससे त्रिकालकाज्ञान तथा
अणिमा आदी आठ सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है ॥ २०५ ॥

स्वरज्ञानीनरोयत्रधनंनानास्तिततःपरं ॥

गम्यतेस्वरज्ञानेनअनायासंफलंलभेत् ॥ २०६ ॥

अर्थ—जहां स्वरज्ञानीपुरुष होवे तहां उससे परै कोई धन
नहीं है क्योंकि जो कोई स्वरके ज्ञानसे गमन कहताहै उसको
परिश्रमके बिनाही फलकी प्राप्ति होतीहै ॥ २०६ ॥

॥ देव्युवाच ॥ देवदेवमहादेवमहाज्ञानंस्वरोदये ॥

त्रिकालंविषमंचैवकथंभवतिशंकर ॥ २०७ ॥

॥ इतिपंचतत्त्वध्यानं ॥

अर्थ—ऐसे सुन पार्वतीबोली हे देव देव महादेव आपने जो यह स्वरोदय महाज्ञान कहा सो त्रिकाल विषय, भूत भविष्यत् वर्तमानके हालको कैसे मालूम कहता है ॥ २०७ ॥

॥ अथयुद्धविजयः ॥

॥ ईश्वर० ॥ अर्थकालोजयप्रश्नशुभाशुभमिति त्रिधा ॥ सतुत्रिकालविज्ञानं नान्यद्भवतिसुंदरी २०८

अर्थ—शिवजी बोले, हैं सुंदरी, प्रयोजनकी समय जयके प्रश्न शुभाशुभ ऐसे तीन प्रकारका ज्ञान है सो यह तीन प्रकारका ज्ञान स्वरोदयके विना अन्य किसीसे नहीं होता है ॥ २०८ ॥

॥ अथ युद्धविषयविचार ॥

तत्त्वेशुभाशुभं कार्यं तत्त्वजयपराजयं ॥

तत्त्वसमर्घमाहर्वंतत्त्वेत्रिपदमुच्यते ॥ २०९ ॥

अर्थ—तत्त्वमें ही शुभाशुभ कार्य तत्त्वमें जय पराजय तत्त्वमें सुभिक्ष दुर्मिक्षका विचार है ऐसे त्रिपद तत्त्व है अर्थात् इन तीनों कार्योंको पहिचानने वाला कहा है ॥ २०९ ॥

॥ देव्युवाच० ॥ देवदेवमहादेव सर्वसंसारसागरे ॥

किन्नराणां परमित्रं सर्वकार्यार्थसाधकं ॥ २१० ॥

अर्थ—पार्वती पूछती है. हे देवदेव महादेव, इस संसार सागरमें मनुष्योंका परम मित्र और सब कार्योंको सिद्ध करनेवाला क्या है ॥ २१० ॥

॥ ईश्वरउ० ॥ प्राण एव परमित्रं प्राण एव परः सखा ॥

प्राणतुल्यपरोबंधुर्नास्ति नास्ति वरानने ॥ २११ ॥

अर्थ—शिवजी कहते हैं. प्राण ही परम मित्र है प्राण ही परम सखा है हे वरानने, प्राणोंके समान परै बंधुनहीं है ॥ २११ ॥

॥देव्युवा०॥कथंप्राणस्थितोवायुःसदेहंप्राणरूप
कं॥तत्त्वेषुसंचरन्प्राणोज्ञायतेयोगिभिःकथं २१२

अर्थ—पार्वती पूछतीहै, प्राणोंमें वायु कैसे स्थितहै और देह क्या प्राणरूपही है और तत्त्वोंविषे विचरताहूआ प्राणवायुयोगीजनोंसे कैसे जाना जाताहै ॥ २१२ ॥

॥शंकरउ०॥कायानगरमध्येतुमारुतोरक्षपालकः॥
प्रवेशोदशभिःप्रोक्तोनिर्गमेद्वादशांगुलः॥२१३॥

अर्थ—शिवजी कहतेहै, इस शरीररूपी नगरमें वायु यह प्राण रक्षपाल चौकसी करनेवाला है सो वह भीतरको प्रवेश होनेके समय दश अंगुलका और बाहिर निकसनेके समय बारह अंगुलका कहाहै ॥ २१३ ॥

गमनेतुचतुर्विंशन्नेत्रवेदास्तुधावने ॥

मैथुनेपंचषष्ठिश्चशयनेचशतांगुलम् ॥ २१४ ॥

अर्थ—और गमन समय चौविस अंगुल भाजनेके समय बियालीस ४२ अंगुल मैथून करनेके समय पैसटअंगुल सोनेके समय सो १०० अंगुल प्राणवायुकी गती जानना २१४॥

प्राणस्यतुगतिर्देविस्वभावाद्वादशांगुलम् ॥

भोजनेवमनेचैवगतिरष्टादशांगुलम् ॥ २१५ ॥

अर्थ—हे देवी, स्वभावसेही प्राणवायुकी गती बारह अंगुलकी है भोजन करनेके समय तथा वमन करनेके समय प्राणकी गती अठारह अंगुल हो जातीहै ॥ २१५ ॥

एकांगुलकृतेनूनंप्राणेनिष्कमतामता ॥

आनंदस्तुद्वितीयेस्यात्कविशक्तिस्तृतीयके २१६

अर्थ—जो यदि योगीजन प्राणकी गती एक अंगुल कम करलेवे तो निष्कामताकी सिद्धि हो जाती है और दो

अंगुल कम करनेसे आनंद प्राप्त होताहै तीन अंगुल कम करनेसे कविताकी शक्ति हो जातीहै ॥ २१६ ॥

वाचासिद्धिःचतुर्थश्चदूरदृष्टिस्तुपंचमे ॥

षष्ठेत्वाकाशगमनंचण्डवेगश्चसप्तमे ॥ २१७ ॥

अर्थ—चारअंगुल कम करनेसे वाणीकी सिद्धि और पांच अंगुल कम करनेसे दूरतक दृष्टि पहुंचनी छह अंगुल कम करनेसे आकाशमें गमन और सात अंगुलतक करनेसे प्रचंड वेग हो जाताहै ॥ २१७ ॥

अष्टमेसिद्धयश्चाष्टौनवमेनिधयोनव ॥

दशमेदशमूर्तिश्चछायानैकादशेभवेत् ॥ २१८ ॥

अर्थ—आठ अंगुल कम करले तो अष्टसिद्धि और नव अंगुल कम करले तो नवविधि दश अंगुल कम करले तो दश प्रकारके रूप, और ग्यारह अंगुल कम करलेवे तो शरीरकी छायाका अभाव प्राप्त हो जाताहै ॥ २१८ ॥

द्वादशेहंसचारश्चगंगामृतरसंपिबेत् ॥

आनखाग्रंप्राणपूर्णेकस्यभक्ष्यंचभोजनं ॥ २१९ ॥

अर्थ—बारह अंगुलश्वास कमचले तोगंगामृतरूप रसको पीता है ऐसे मस्तकसे लेके नखपर्यंत जो योगी प्राणोंको पूर्ण करलेताहै उसको फिर भोजन करनेकी कछु अपेक्षा नहीं रहतीहै ॥ २१९ ॥

एवंप्राणविधिःप्रोक्तःसर्वकार्यफलप्रदः ॥

ज्ञायतेगुरुवाक्येनविद्याशास्त्रस्यकोटिभिः ॥ २२० ॥

अर्थ—ऐसे सब कार्योंके फलको देनेवाली प्राणविधि क हीहै इसका ज्ञान गुरुके वचनसे होताहै विद्या और करोड़ों शास्त्रोंसे नहीं होता ॥ २२० ॥

प्रातश्चंद्रोरविःसायं यदि दैवाच्चलभ्यते ॥

मध्यान्हो मध्यरात्रे च परतस्तु प्रवर्तते ॥ २२१ ॥

अर्थ—जो यदि दैवयोगसे प्रातःकाल चंद्रमा और सायं काल सूर्यस्वर न मिले तो मध्यान्हसे अथवा आधी रात्रीसे पीछे प्रवर्त होते हैं ॥ २२१ ॥

दूरयुद्धे जयी चंद्रः समीपे तु दिवाकरः ॥

वहनाड्यांगतः पादं सर्वसिद्धिं प्रजायते ॥ २२२ ॥

अर्थ—दूर देशमें युद्ध करना होवे तो चंद्रमा विजयकारी है समीप देशके युद्धादिकमें सूर्यविजयकारी है और जौनसा-स्वर चलता हो उसी स्वरको आगे करके गमन करे तो वह गमन सब सिद्धियोंको देनेवाला है ॥ २२२ ॥

यात्रारंभे विवाहे च प्रवेशे नगरादिके ॥

शुभकार्येषु सर्वेषु चंद्रवारः प्रशस्यते ॥ २२३ ॥

अर्थ—यात्रारंभ विवाह नगर आदिका प्रवेश इत्यादिक शुभ कार्य चंद्रमाका स्वर चलते समय सिद्ध होते हैं ॥ २२३ ॥

अयन तिथिदिने शस्वीयतस्वे अयुक्ते यदि वहति
कदाचिद्धे हयोगेन पुंसां ॥ सजयति रिपुसैन्यं स्तं
भमात्रः स्वरेण प्रभवति न च विघ्नं केशवस्यापिलो
के ॥ २२४ ॥

अर्थ—अयन, तिथि वार इनके स्वामियोंसे युक्त हुए आप-ने स्वरका तत्व जो यदि पुरुषोंके दैवयोगसे वहता होय तो वह पुरुष शत्रुकी सेनाको स्वरके स्तंभ रोकनेसे ही जीतता है और विष्णुके लोकमें प्राप्त होनेविषे भी उसकै विघ्न नहीं होता है ॥ २२४ ॥

जीवंरक्षजीवंरक्षजीवांगेपरिधायच ॥

जीवोजयतियोयुद्धेजीवनजयतिमेदिनी २२५ ॥

अर्थ—जो पुरुष जीवांग, हृदयको वस्त्रसे आच्छादितकर युद्धमें जीवंरक्ष जीवंरक्ष ऐसा जपताहै वह संपूर्ण पृथ्वीको जीत लेताहै ॥ २२५ ॥

भूमौजलेचकर्तव्यंगमनंशांतिकर्मतु ॥

वन्हौवायुप्रदीप्तेषुखेःपुनर्नोभविष्यति ॥ २२६ ॥

अर्थ—शांतिके कर्मोंमें पृथ्वी वा आकाशतत्त्वमें गमन करै और क्रूर युद्ध आदिकर्मोंमें अग्नि तथा वायुतत्त्वके चल-तेसमय गमन करै ॥ २२६ ॥

जीवेनशस्त्रंबध्नातिजीवेनैवविकाशयेत् ॥

जीवेनप्रक्षिपेच्छस्त्रंयुद्धेजयतिसर्वदा ॥ २२७ ॥

अर्थ—जीव करके शस्त्रको बांधै यानें जौ नासास्वर चल-ताहो उसही अंगमें शस्त्रको धारणकरै और जीवसे, जो ना-सास्वर चलताहो उसही हाथसे शस्त्रको खोले और उसही-से शत्रुकेप्रति फेकै वह पुरुष युद्धमें सदा जीतताहै ॥ २२७ ॥

आकृष्यप्राणपवनंसमारोहेतवाहनं ॥

समुत्तरेत्पदंदद्यात्सर्वकार्याणिसाधयेत् ॥ २२८ ॥

अर्थ—जो पुरुष प्राणवायुको ऊपरीको खींचके सवारी पैचढै और श्वास उतरते समय, रकाव, आदिपै पैर धरे वह सब कार्योंको साधताहै ॥ २२८ ॥

अपूर्णे शत्रुसामग्रीपूर्णे वास्वबलं यथा ॥

कुरुते पूर्वतत्त्वस्थोजयत्येको वसुंधरां ॥ २२९ ॥

अर्थ—खालीस्वरमें शत्रुकी सेना आदिसामग्री तैयार होवे और पूर्ण स्वरमें अपनी सेनाको तैयार करै ऐसे पूर्ण तत्त्वमें

स्थितहुआ पुरुष अकेलाही पृथ्वीको जीत लेताहै ॥ २२९ ॥

यन्नाडीवहतेचांगेतस्यामेवाधिदेवता ॥

सन्मुखोपिदिशातेषांसर्वकामफलप्रदा ॥ २३० ॥

अर्थ—शरीरमें जौनसीनाडी स्वर चलताहै और उसही नाडीमें नाडीका अधिपति देवताहो और तिनकी दिशा सन्मुख होय तो वह दिशा सब कामोंको सिद्ध करनेवालीहै २३०

आदौतुक्रियतेमुद्रापश्चात्युद्धंसमाचरेत् ॥

सर्पमुद्राकृतायेनतस्यसिद्धिर्नसंशयः ॥ २३१ ॥

अर्थ—पहले तो मुद्राको करै पीछे युद्ध करै जो पुरुष सर्प मुद्रा करताहै उसकी सिद्धि होतीहै इसमें संदेह नहीं ॥ २३१ ॥

चंद्रप्रवाहेप्यथसूर्यवाहेभटासमायांतीचयोद्धुका
माः॥ समीरणस्तत्त्वविदांप्रतोयाशून्येतिसातुप्र
तिकार्यनाशम् ॥ २३२ ॥

अर्थ—चंद्रमाके स्वरमें अथवा सूर्यके स्वरमें शूर वीर योद्धा युद्ध करनेको जातेहै तहां वायुतत्त्व, अथवा पूर्णस्वर चलताहुआ शुभहै ऐसे तत्त्ववेत्ताओंका निश्चयहै और खालीस्वर कार्यको नाश करनेवाला कहाहै ॥ २३२ ॥

यांदिशंवहतेवायुर्युद्धंतदिशिदापयेत् ॥

जयत्वेवनसंदेहशक्रोपियदिचाग्रतः ॥ २३३ ॥

अर्थ—जिस दिशाको बांयी या दहिनी तर्फ वायुस्वर चलताहो उसी दिशामें युद्धकेवास्ते जावे तो यदि आगे इंद्र होवे तो उसकेभी जीतके आवताहै ॥ २३३ ॥

यत्रनाड्यांवहेद्वायुस्तदंगेप्राणमेवच ॥

आक्रष्यगच्छेत्कर्णांतंजयत्येवपुरंदरम् ॥ २३४ ॥

अर्थ—जौनसास्वर चलताहो उसी अंगविषे प्राणको स्वरको कर्णपर्यंत स्वीचके गमनकरे तो युद्धमें इंद्रकोभी जीत सकताहै ॥ २३४ ॥

प्रतिपक्षप्रहारेभ्यः पूर्णांगयोभिरक्षते ॥

नतस्यरिपुभिः शक्तिर्बलिष्ठैरपिहन्यते ॥ २३५ ॥

अर्थ—जो पुरुष युद्धमें शत्रुके प्रहारोंसे अपने पूर्ण अंगकी रक्षा करताहै अर्थात् जो नासास्वर चलताहो उस अंगकी रक्षाकरताहै उसकी शक्ति, बलवाले शत्रुओंसेभी हत नहीं होती ॥ २३५ ॥

अंगुष्ठतर्जनीवंशेपादांगुष्ठेस्तथाध्वनिः ॥

युद्धकालेचकर्तव्यंलक्षयोद्धाजयीभवेत् ॥ २३६ ॥

अर्थ—जो पुरुष युद्धके समय अंगुष्ठ और तर्जनी अंगुलीकी पोरीविषे शब्द करे अथवा पैरोंके अंगूठेमें ध्वनि करे कुडकावे वह लाखों योद्धाओंको जीतताहै ॥ २३६ ॥

निशाकरेरवौवारमध्येयस्यसमीरणः ॥

स्थितोरक्षेपिगंतानिजयकाक्षिमतस्तदा ॥ २३७ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके चंद्रमाके स्वरमें अथवा सूर्यके स्वरमें वायुतत्त्व चलताहो उस समय जयकी इच्छा करनेवाला पुरुष गमन करे तो सब दिशाओंकी रक्षा करताहै ॥ २३७ ॥

श्वासप्रवेशकालेचदूतोजल्पतिवांछितं ॥

तस्यार्थसिद्धिमायातिनिर्गमेनैवसुंदरि ॥ २३८ ॥

अर्थ—हे सुंदरी, जिस मनुष्यके भीतरको श्वास प्रवेश होतेहुए कोई दूत उसकी वांछित बातको कहै तो उसका वह प्रयोजन सिद्ध होताहै और श्वासके निर्गमन समय कार्य सिद्ध नहीं होता ॥ २३८ ॥

लाभादिन्यपिकार्याणिपृष्ठानिकथितानिच ॥

जीवेविंशतिसिद्धयन्तिहानिनिःसरणेभवेत्॥२३९॥

अर्थ—लाभआदिक संपूर्णही कहेहुए अथवा पूछेहुए कार्य स्वरप्रदेश होतेसमय सिद्ध होतेहैं और स्वरके बाहिर निक-
सनेके समय हानि होतीहै ॥ २३९ ॥

नरेदक्षास्वकीयाचस्त्रियांवामाप्रशस्यते ॥

कुंभकोयुद्धकालेचतिस्रोनाडयःस्त्रयोगतिः॥२४०॥

अर्थ—पुरुषकै अपनी दहिनीनाडी और स्त्रीके बायींनाडी स्वर चलता शुभ कहाहै युद्धकालमें कुंभकनाडी श्रेष्ठहै ऐसे तीन नाडी है और इनकी गतिभी तीनही है ॥ २४० ॥

हकारस्यसकारस्यविनाभेदंस्वरःकथं ॥

सोहंहंसपदंनैवजीवोजयतिसर्वदा ॥ २४१ ॥

अर्थ—हकार और सकारके भेदविना स्वरज्ञान कैसे होवे किंतु सोहं, हंस, इन दोनों पदोंसेही जीव सदा जयको प्राप्त होता है ॥ २४१ ॥

शून्यांगंपूरितंकृत्वाजीवांगंगोपयेजयः ॥

जीवांगंघातमाप्नोतिशून्यांगंरक्षतेसदा ॥ २४२ ॥

अर्थ—शून्यअंगको अर्थात् जो नासास्वर न चालताहो उसको पूर्ण करके जीवांगकी, अर्थात् जो स्वर पूर्ण चलताहो उस अंगविषे जयकी रक्षाकरे क्योंकि जीवांगमेंही घात प्राप्त होताहै और शून्य स्वरवाला अंग सदा रक्षा करताहै॥२४२॥

वामेवायदिवादक्षेयदिपृच्छतिपृच्छकः ॥

पूर्णेघातो न जापेत शून्येघातं विनिर्दिशेत् ॥ २४३ ॥

अर्थ—जो कोई दूत बायांस्वर चलते समय अथवा दहिना-
स्वर चलते समय युद्धकी बात पूछे तहां पूर्णस्वर चलताहो तो

घात न जानना और शून्य स्वर होवे तो घात बतलाना ॥ २४३ ॥

भूतत्वेनोदरेघातः पदस्थाने बुना भवेत् ॥

उरस्थानेनितत्वेन करस्थाने च वायुना ॥ २४४ ॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्व होवे तो उदरमें घात जलतत्त्व होय तो बैरमें घात अग्नितत्त्व होय तो जांघोंमें घात वायुतत्त्व होय तो हाथमें घात शस्त्र लगना बताहै ॥ २४४ ॥

सिरसिव्योमतत्वेवाज्ञातव्यो घात निर्णयः ॥

एवंपंचविधो घातः स्वरशास्त्रप्रकाशितः ॥ २४५ ॥

अर्थ—आकाशतत्त्व होय तो शिरमें घात जानना ऐसे पांच प्रकारका घात स्वरोदय शास्त्रमें कहाहै ॥ २४५ ॥

युद्धकाले यदा चंद्रः स्थायी जयति निश्चितं ॥

यदा सूर्यप्रवाहस्तु यायी विजयते तथा ॥ २४६ ॥

अर्थ—युद्धकालमें जो चंद्रमाका स्वर चलताहो तो निश्चय स्थायी अर्थात् अपने देशमें स्थितहुआ राजा जीतताहै और सूर्यस्वर चलताहोवे तो यायी अपने देशसे दूसरेके देशमें जाके युद्ध करनेवाला जीतताहै ॥ २४६ ॥

जयमध्ये तु संदेहो नाडीमध्ये तु लक्षयेत् ॥

सुषुम्नाय गतः प्राणं समरेशत्रुसंकटे ॥ २४७ ॥

अर्थ—जयके मध्यमें जीतनेमें जो संदेह होवे तो मध्यकी नाडीको देखे जो यदि सुषुम्णा नाडी विषे प्राणवासु चलताहोय तो युद्धमें शत्रुको संकट होवे ॥ २४७ ॥

यस्यां नाड्यां भवेत् चारः तादृशं युद्धं संश्रयेत् ॥

तदा सौजयमाप्नोति नात्र कार्यं विचारणाः ॥ २४८ ॥

अर्थ—जौ नसी नाडी चकतीहोवे उसही दिशामें युद्धसम-

य खडा होना कि जैसे चंद्रमाकी पूर्व और उत्तरदिशा और सूर्यकी दक्षिण तथा पश्चिमपिशा कहीहै तिनमेंही खडा होनेसे जयप्राप्त होता है इसमें संदेह नहीं है ॥ २४८ ॥

यदिसंग्रामकालेतुवामनाडीयदाभवेत् ॥

स्थापनोविजयंविधात्त्रिपुवश्योदयोपिच ॥ २४९ ॥

अर्थ—जो यदि युद्धसमयमें बामनाडी चले तो युद्धमें स्थायी देशवासीका जय होवे और यायी परदेशसे आया-हुआ शत्रु वशमें होवे ॥ २४९ ॥

यदिसंग्रामकालेचसूर्यस्तुव्यावृत्तोवहेत् ॥

तदाजयीजयंविधात्सदेवासुरमानवान् ॥ २५० ॥

अर्थ—और जो यदि युद्धकालमें निरंतर सूर्यकास्वर बहता होय तो यायी गमन करनेवालेकीही देवता तथा असुर वा मनुष्योंमें जय होतीहै ॥ २५० ॥

रणेहरतिशत्रुस्तंवामायांप्रविशेन्नरः ॥

स्थानंविषवचाराभ्यांजयसूर्येणधावति ॥ २५१ ॥

अर्थ—जो मनुष्य बायांस्वर चलतेसमय युद्धमें प्रवेश हो. ता है उसको उसका शत्रु मार देताहै और सुषुम्णानाडी चलते समय गमन करनेवालेको स्थान मिलताहै सूर्यके स्वर चलतेसमय विजय मिलताहै ॥ २५१ ॥

युद्धेद्वयेकृतेप्रश्नेपूर्वस्यप्रथमोजयः ॥

रित्तेचैवद्वितीयेतुजयीभवतिनान्यथा ॥ २५२ ॥

अर्थ—यदि कोई दोजनोंके युद्धका एकही वार प्रश्नकरे तो पूर्णस्वर चलता होय तो पहलेकी जय और स्यालीस्वर चलता होय तो दूसरेकी जब बताना इसमें संदेह नहीं ॥ २५२ ॥

पूर्वानाडीगतःपृष्ठेशून्यांगंवदताग्रतः ॥

शून्यस्थानेकृतेशत्रुभ्रियतेनात्रसंशयः ॥ २५३ ॥

अर्थ—जो यदी पूर्णस्वर चलतेहुए युद्धमें गमन किया जावे तो शत्रु पीड देके चलाजावे और शून्यनाडीके समय गमन कियाहो तो शत्रु सामने आवे और शत्रूको शून्यस्थान जौनसा स्वर न चलताहो उस अंगकीतर्फ करे तो शत्रुको मृत्यु होताहै इसमें संदेह नहीं ॥ २५३ ॥

वामभागेसमंनामयस्यतस्यजयोभवेत् ॥

पृच्छकोदक्षिणेभागेविजयीविषमाक्षरः ॥ २५४ ॥

अर्थ—जो कोई बायींतर्फ बैठके सम अक्षरोंको उच्चारण करके प्रण करे उसकी जय होतीहै और पृच्छक दहिने भागमें स्थितहोके विषमअक्षर उच्चारण करे तो जय होवे २५४

यदापृच्छतिचंद्रस्थस्तदासंध्यांनमादिशेत् ॥

पृच्छद्यदातुसूर्यस्यतदाजानीहविग्रहः ॥ २५५ ॥

अर्थ—जो यदि प्रण समय चंद्रमाका स्वर चलताहोय तो संधि मेल होवे सूर्यके स्वरमें प्रण करे तो विग्रह युद्ध होना कहै ॥ २५५ ॥

पार्थिवेचसमंयुद्धंसिद्धिर्भवतिदारुणे ॥

युद्धेहितेजसीभंगोमृत्युर्वायोनभस्यपि ॥ २५६ ॥

अर्थ—जो यदि पृथ्वीतत्व होय तो बराबरयुद्ध होना कहै जलतत्वमें सिद्धि होवे अग्नितत्वमें अंगभंगआदि होना और वायु तथा आकाशतत्वमें मृत्यु होवे ॥ २५६ ॥

निमित्तकप्रसादाद्वायदानज्ञायतेनिलः ॥

पृच्छाकालेतदाकुर्यादिदंयत्नेनबुद्धिमान् २५७

अर्थ—जो यदि प्रणसमय किसी निमित्तसे अथवा प्रमा-

दसे स्वरका निश्चय ज्ञान नहीं होवे तो बुद्धिमान् जन यत-
नसे यह करे ॥ २५७ ॥

निश्चलांधारणांकृत्वापुष्पंहस्तांनिपातयेत् ॥

पूर्णांगिपुष्पपतनंशून्येचतत्परंभवेत् ॥ २५८ ॥

अर्थ—अचलधारण करके अपने हाथसे पुष्पको पृथ्वीमें
गिरे पूर्णांग अर्थात् शरीरके सन्मुख पुष्पपडे तो शुभफल
कहै और दूर गिरे तो अशुभ फल जानना ॥ २५८ ॥

तिष्ठंत्युपविशन्वापिप्राणमाकर्णयन्निजं ॥

मनोभंगमकुर्वाणःसर्वकार्येषुजीवति ॥ २५९ ॥

अर्थ—खड़ा होताहुआ तथा बैठताहुआ अपने प्राणोंको
एकाग्र मनसे भीतरको खींचताहुआ पुरुष सब कार्योंमें
जीवताहै अर्थात् शुभफलको प्राप्त होताहै ॥ २५९ ॥

नकालोविविधंधोरंनशस्त्रंनचपन्नगाः ॥

नशस्त्रव्याधिचौराद्याःशून्यस्थंनाशितुक्षमाः २६०

अर्थ—काल अनेक प्रकारके घोर शस्त्र सर्प शत्रु व्याधि
चोर इत्यादि ये सब शून्यमें स्थितहुए खालीस्वरवाले पुरु-
षको मारनेमें समर्थ नहींहै ॥ २६० ॥

जीवेनस्थापयेद्वायुर्जीवेनारंभयेत्पुनः ॥

जीवेनक्रीडतोनित्यंद्यूतंजयतिसर्वथा ॥ २६१ ॥

अर्थ—जीवस्वरसे अर्थात् बहतेहुए स्वरसे वायुको स्थित
करै और जीवसेही वायुका आरंभ करै और जीव स्वरमेंही
क्रीडा जूवाआदिका प्रारंभ करै ऐसा पुरुष जूवामें नित्य
जीतताहै ॥ २६१ ॥

स्वरज्ञानीबलादग्नेनिष्फलंकोटिधाभवेत् ॥

इहलोकेषरत्रापिस्वरज्ञानीबलीसदा ॥ २६२ ॥

अर्थ—स्वरज्ञानीके बलके प्रागे अन्य किरोडों प्रकारके भी बल निष्फल होजातेहैं इस लोकमें तथा परलोकमें भी स्वर-ज्ञानी पुरुष सदा बली रहताहै ॥ २६२ ॥

दशलक्षायुतंलक्षंदेशाधिपबलंकचित् ॥

शतक्रतुसुरेन्द्राणांबलंकोटिगुणंभवेत् ॥ २६३ ॥

अर्थ—किसीको दश अथवा सौ किसीको दक्षहजार कि-सीको लक्षका बल रहताहै कहीं देशके राज्यका बलहै और इनसे भी किरोड गुना बल इंद्र तथा ब्रह्माआदि अन्य देवता ओंके है तैसेही स्वरज्ञानीको भी कोटिगुना बल रहताहै २६३

देव्यु० ॥ परस्परमनुष्याणांयुद्धेप्रोक्तोजयस्तथा ॥

यमयुद्धेसमुत्पन्नेमनुष्याणांकथंजयः ॥ २६४ ॥

अर्थ—पार्वती पूछती है आपने मनुष्योंके परस्पर युद्धमें तो जय कहा और जब धर्मराजके संग मनुष्यका युद्ध होवे तब किस प्रकार जय होवे ॥ २६४ ॥

ईश्वर० ॥ ध्यायेदेवस्थिरोजीवंक्षुहुयाज्जावसंगमे ॥

इष्टसिद्धिर्भवेत्तस्यमहालाभोजयस्तथा ॥ २६५ ॥

अर्थ—शिवजी कहते हैं हेपार्वती जो मनुष्य स्थिर स्वस्थ होके देवका ध्यान करे पीछे जीव संगम अर्थात् कुंभक ना-डीमें जीव स्वरका होमकरे उस मनुष्यके इष्टकी सिद्धि हो-ती है महालाभ और जयकी प्राप्ति होती है ॥ २६५ ॥

निराकारात्समुत्पन्नंसाकारंसकलंजगत् ॥

तत्साकारंनिराकारंज्ञानेभवतितत्क्षणं ॥ २६६ ॥

अर्थ—निराकार ईश्वरसे संपूर्ण साकार जगत् उत्पन्न भयाहै सो वह साकार अगत् ईश्वरके ज्ञान होतेही तिसी क्षणमें निराकार होताहै अर्थात् संसारबंधनसे छूटताहै २६६

देव्यु० ॥ नरयुद्धंयमयुद्धंत्वयाप्रोक्तंमहेश्वर ॥

इदानींदेवदेवानांवशीकरणकंवद ॥ २६७ ॥

अर्थ—श्रीपार्वती बोली हे महादेवजी आपने मनुष्य युद्ध तथा यमयुद्धभी कहा अब देवताओंके देवोंकाभी उत्तम वशीकरण कहो ॥ २६७ ॥

ईश्वर० ॥ चंद्रसूर्येणचारुष्यस्थापयेज्जीवमंडलं ॥

आजन्मवशगारामाकथितेयंतपोधनैः ॥ २६८ ॥

अर्थ—शिवजी कहते हैं स्त्रीके चंद्रस्वरको अपने सूर्यस्वर करके आकर्षण कर पीछे उसस्वरको जीव मंडलमें स्थित रखे तो जन्मभर पुरुषके वशमें स्त्री रहती है ऐसे तपस्वी लोगोंने कहाहै ॥ २६८ ॥

जीवेनगृह्यतेजीवोजीवोजीवस्यदीयते ॥

जीवस्थानेगतोजीवोवालाजीवांतकारकः २६९

अर्थ—जो पुरुष अपने जीव स्वर अर्थात् चलतेहुये स्वरसे स्त्रीके जीव स्वरको ग्रहण करे और अपने जीव स्वरको स्त्रीके जीवस्वरमें देवे ऐसे जीव स्थानमें प्राप्तहुआ जीव स्वर स्त्रीके जीवको वशमें करतहै ॥ २६९ ॥

रान्यांतयामवेलायांप्रसुप्तेकामिनीजने ॥

ब्रह्मजीवंपिवेद्यस्तुवालाप्राणहरोनरः ॥ २७० ॥

अर्थ—रात्रीके पिछले प्रहरमें जबकि स्त्री सोती होवे तब जो मनुष्य स्त्रीके ब्रह्मस्वर, सुषुम्नास्वरको अपने स्वरसे पी-ताहै वह स्त्रियोंके प्राणोंको वशमें कर लेताहै ॥ २७० ॥

अष्टाक्षरंजपित्वातुतस्मिन्कालेक्रमेसति ॥

तत्क्षणंदीयतेचंद्रोमोहमायातिकामिनी ॥ २७१

अर्थ—फिर वह कालव्यतीत हो लेवे तब अष्टाक्षर मंत्रको जपके तिसी क्षणमें अपना चंद्रस्वरको जो स्त्रीको देताहै उसके वशमें कामिनी होजाती है ॥ २७१ ॥

शयनेवाप्रसंगेवायुवत्यालिंगनेपिवा ॥

यत्सूर्येणापिबेच्चंद्रःसभवेन्मकरध्वजः ॥ २७२ ॥

अर्थ—शयनमें अथवा रतिसमय अथवा स्त्रीके आलिंगन समय जो पुरुष अपने सूर्यस्वर करके स्त्रीके चंद्रस्वरको पीताहै वह कामदेवके समान स्त्रियोंको प्रिय होताहै ॥ २७२ ॥

शिवोवालिङ्गतेशक्त्याप्रसंगेदक्षिणेपिवा ॥

तत्क्षणादापयेद्यस्तुमोहयेत्कामिनीशतं ॥ २७३ ॥

अर्थ—जो यदि रतिसमय शिव, सूर्यस्वर पुरुषका हो स्त्रीका शक्ति चंद्रस्वर होवे ऐसे दोनुवोका स्वर मिलजाय अथवा स्त्रीके दहिनें स्वरमें अपने चंद्रस्वरको प्रविष्ट करे ऐसा पुरुष सौ स्त्रियोंको तिसी क्षणमें मोह लेताहै ॥ २७३ ॥

सप्तनवत्रयःपंचवारात्संगस्तुसूर्यगे ॥

चंद्रोद्विद्वर्यषट्कृत्वावश्याभवतिकामिनी ॥ २७४ ॥

अर्थ—स्त्रीके सूर्यस्वरमें अपने चंद्रस्वरको दियें पीछे जो सात वा नव तथा तीनवा पांचवार संग करै और स्त्रीके चंद्रस्वरमें अपने सूर्यस्वरको करके दो चार छह वार संग करनेसे स्त्री वशमें हो जाती है ॥ २७४ ॥

सूर्यचंद्रौसमाकृष्यसूर्याक्रांत्याधरोष्ठयोः ॥

कामिन्यास्तुमुखंस्पृष्ट्वावारंवारमिदंचरेत् ॥ २७५ ॥

अर्थ—अपने सूर्य तथा चंद्र स्वरको सर्पकी चालकी तरह आकर्षण कर अपने मुखसे स्त्रीके मुखको अधरोष्ठोपर स्पर्श-

कर वारंवार इस आचरणको करे अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारसे चंद्र और सूर्य स्वरका मेल करे ॥ २७५ ॥

आप्राणमिति यमस्य या वन्निद्रावशंगता ॥

पश्चाज्जाग्रतवेलायां चोष्यते गल्यचक्षुषी ॥ २७६

अर्थ—जब तक स्त्री निद्राके वशमें रहै तब तक उसके मुख पद्मका चुंबन करता रहै और जाग्रत उठे उस समय नेत्र वा गलेका चुंबन करे ॥ २७६

अनेन विधिना कामी वशयेत् सर्व कामिनी ॥

इदं न वाच्यमन्यस्मिन्नित्याज्ञा परमेश्वरी ॥ २७७ ॥

इति वशीवकः प्रकरण ॥

अर्थ—इस विधिसे कामी पुरुष सब स्त्रियोंको वशमें करे हे परमेश्वरि यह वशीकरण किसीके आगे न कहना यह मेरी नित्य आज्ञा है ॥ २७७ ॥

॥ अथ गर्भप्रकरणं ॥

ऋतुकाले भवेन्नारी पंचमेन्हियदा भवेत् ॥

सूर्यचंद्रमसो योगे सेवनात् पुत्रसंभवः ॥ २७८ ॥

अर्थ—स्त्रीको ऋतुकाल, रजस्वला हुए पीछे जब पांचवा दिन आवे तब स्त्रीका चंद्र, बायां स्वर चलता हो और पुरुषका दहिना सूर्यस्वर चलता हो तब रतिकरनेसे पुत्र उत्पन्न होता है ॥ २७८ ॥

शंखवल्ली गवां दुग्धं पृथ्व्यापो वहते यदा ॥

ऋतुस्नातापि वेन्नारी ऋतुदानं तु योजयेत् ॥ २७९ ॥

अर्थ—जिस समय ऋतुकालमें पृथ्वी और जलतत्त्व बहता हो तब स्त्री ऋतुस्नान करके गौके दूधमें शंखवल्लीको पीवे पीछे पुरुष ऋतुदानदे वे भोग करे ॥ २७९ ॥

भतुरग्रेवदेद्वाक्यंभोगंदेहित्रिभिर्वचः ॥

रूपलावण्यसंपन्नोनरसिंहप्रसूयते ॥ २८० ॥

अर्थ—तहां भोगसमय स्त्री अपने भर्तारसे तीन वार भोग मागनेका वचन कहै ऐसे करनेसे रूप लावण्यसंयुक्त मनुष्योंमें सिंहसरीखा पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ २८० ॥

सुषुम्णासूर्यवाहेनऋतुदानंतुयोजये ॥

अंगहीनःपुमान्यस्तुजायतेत्रासविग्रहः ॥ २८१ ॥

अर्थ—जो मनुष्य सुषुम्णानाडीमें सूर्यके प्रवाहमें स्त्रीसंग करताहै उसके अंगहीन बुरेरूपवाला पुत्र उत्पन्न होताहै ॥ २८१ ॥

विषमांकेदिवारात्रोविषमांकेदिवाधिपः ॥

चंद्रतोषाम्नितत्वेषुबंध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥ २८२ ॥

अर्थ—ऋतुसमयके अनंत पांचआदि विषम दिनोंमें दिनमें अथवा रात्रीमें पुरुषका सूर्यस्वर चले और स्त्रीका चंद्रस्वरमें जल वा अम्लितत्व चलता होवे तब स्त्रीसंग करनेसे बंध्याभी पुत्रको प्राप्त होती है ॥ २८२ ॥

ऋत्वारंभेरविःपुंसांस्त्रयीचैवसुधाकरः ॥

उभयोःसंगमेप्राप्तेबंध्यापुत्रमवाप्नुयात् ॥ २८३ ॥

अर्थ—ऋतुसमयमें पुरुषोंका सूर्यस्वर होवे और स्त्रियोंको चंद्रस्वरहोवे तब दोनुवोंके संगम होनेसे बंध्यास्त्रीभी पुत्रको प्राप्त होतीहै ॥ २८३ ॥

ऋत्वारंभेरविःपुंसांशुक्रांतैचसुधाकरः ॥

अनेनक्रमयोगेननादत्तेकामिनीतदा ॥ २८४ ॥

अर्थ—जो यदि स्त्रीसंग करतेहुए तो पुरुषका सूर्यस्वर चलता होवे और वीर्यपातके समय चंद्रस्वर चलने लगजावे

तब इस क्रमयोगसे स्त्री गर्भको ग्रहण नहीं करती है ॥ २८४ ॥

चंद्रनाडीयदाप्रस्नेगर्भेकन्यातदाभवेत् ॥

सूर्योवहेत्तदापुत्रोद्वयोर्गर्भोविहन्यते ॥ २८५ ॥

अर्थ—जो कोई चंद्रस्वर चलतेहुए गर्भका प्रश्न करे उसके कन्या होती बतलावे सूर्यस्वर चलता होय तो पुरुष और दोनोस्वर सुषुम्णानाडी चलती होवे तो गर्भपात होना कहे ॥ २८५ ॥

चंद्रेस्त्रीपुरुषःसूर्येमध्यमार्गेनपुंसकः ॥

गर्भप्रस्नेतदादूतःपूर्णेपुत्रःप्रजायते ॥ २८६ ॥

अर्थ—प्रश्नसमय चंद्रस्वर चलता होय तो कन्या और सूर्यस्वर चलता होय तो पुत्र दोनों स्वर चलते होवे तो नपुंसक पैदा होता है परंतु जो यदि पूछनेवाला दूत पूर्ण, जौनसास्वर चलता हो उसी हाथकीतर्फ आयके बैठा हो तो पुत्र पैदा होवे ॥ २८६ ॥

पृथ्वीपुत्रीजलेपुत्रःकन्यकातुप्रभंजने ॥

तेजसागर्भपातस्यान्नभसापिनपुंसकः ॥ २८७ ॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्व चलता होवे तो पुत्र और जलतत्त्व चलताहो तो पुत्र पैदा होवे और वायुतत्त्व चलता होवे तो कन्या अग्नितत्त्वमें गर्भपात और आकाशतत्त्वमें नपुंसक जानना ॥ २८७ ॥

शून्येशून्ययुगेयुग्मंगर्भपातश्चसंकमे ॥

तत्त्वविद्भिस्समाख्यातमेवंज्ञेयंचसुंदरि ॥ २८८ ॥

अर्थ—हे सुंदरी शून्यस्वरमें शून्य और दो २ स्वर बहते होवे तो योग्य जोडा सुषुम्णानाडी बहती होतो गर्भपात ऐसे तत्त्ववेत्ताजनोंने कहाहै ॥ २८८ ॥

गर्भाधानंमारुतेस्याच्चदुःखीविख्यातोवावारुणे
सौख्ययुक्तः ॥ गर्भस्त्रावीस्वप्नजीवीचवन्हौभोगी
भव्योपार्थिवेनार्थयुक्तः ॥ २८९ ॥

अर्थ—जो यदि वायुतत्त्वमें गर्भाधान होवे तो दुःखवाला पुत्र होवे जलतत्त्वमें दिशाओंमें विख्यात और सुखसेयुक्त होताहै अग्नितत्त्वमें गर्भाधान होवे तो गर्भपात हो अथवा स्वल्प आयुवाला होवे पृथ्वीतत्त्वमें हो तो द्रव्य और भोग आदिसे युक्त रहनेवाला होवे ॥ २८९ ॥

धनवान्सौख्ययुक्तस्यभोगवानर्थसंस्थितिः ॥
स्यान्नित्यंवारुणेतत्वेव्योम्निगर्भेविनश्यति ॥ २९० ॥

अर्थ—जलतत्त्वमें जो गर्भाधान हुआ हो वह बालक धनवान् सुखी भोगयुक्त होताहै और जो आकाशतत्त्वमें गर्भाधान हुआ हो वह गर्भ नष्ट हो जाताहै ॥ २९० ॥

माहेंद्रेसुसुतोप्ततिःवारुणेदुहिताभवेत् ॥
शेषेतुगर्भहानिस्याज्जातमात्रस्यवामृतिः ॥ २९१ ॥

अर्थ—पृथ्वीतत्त्वमें गर्भाधान हो तो पुत्र उत्पन्न होवे जलतत्त्वमें कन्या और अन्य तत्त्वोंमें गर्भकी हानि होतीहै अथवा जन्मतेही मर जाताहै ॥ २९१ ॥

रविमध्येगतश्चंद्रश्चंद्रमध्येगतोरविः ॥

ज्ञातव्यंगुरुतःशीघ्रंनवेद्यंशास्त्रकोटिभिः ॥ २९२ ॥

अर्थ—सूर्यस्वरमें चंद्रमाकी गति करनी और चंद्रस्वरमें सूर्यकी गति गुरुसे शीघ्रही सीखनी चाहिये यह बात कि-रोडों शास्त्रोंमें नहीं आतीहै ॥ २९२ ॥ इति गर्भप्रकरणम् ॥

अथ संवत्सर प्रकरणम् ।

चैत्रशुक्लप्रतिपदिप्रातस्नात्वाविभेदतः ॥

पश्येद्विचक्षणोयोगीदक्षिणेउत्तरायणे ॥ २९३ ॥

अर्थ—चैत्रशुक्लपक्षकी प्रतिपदाको प्रातःकालसमय तत्त्वों-
के भेदसे पंडितजन दक्षिणायन उत्तरायनको देखें अर्थात्
वर्षादिनके हालको विचारें ॥ २९३ ॥

चंद्रोदयस्यवेलायांवहमानाथतावतः ॥

पृथिव्यापस्तथावायुःसुभिक्षंसर्वसस्यजं ॥ २९४ ॥

अर्थ—जो यदि उससमय चंद्रस्वरमें पृथ्वी तत्त्व चलता
हो अथवा जल तथा वायुतत्त्व चलता होय तो सुभिक्ष होवे
संगूर्ण स्वेतीयां निपजै ॥ २९४ ॥

तेजोव्योम्निभयंधोरदुर्भिक्षंकालतत्त्वतः ॥

एवंतत्त्वंकालज्ञेयंसर्वेमासेदिनेतथा ॥ २९५ ॥

अर्थ—अग्नि वा आकाशतत्त्व होवे तो घोर भह होय दु-
र्भिक्ष होय ऐसेही वर्षमें तथा मास प्रवेशमें वा दिनमें
तत्त्वोंके अनुसार फलोंको जानें ॥ २९५ ॥

मध्यमाभवतिकूरादुष्टासर्वत्रकर्मसु ॥

देशभंगमहारोगाःक्लेशकष्टादिदुःखदा ॥ २९६ ॥

अर्थ—मध्यमा सुषुम्णानाडी क्रूर हैं सब कर्मोंमें दुष्ट हैं देश-
भंग महारोग क्लेश कष्ट इत्यादिक दुःखोंको देनेवाली हैं ॥ २९६ ॥

मेषसंक्रांतिवेलायांस्वरभेदंविचारयेत् ॥

संवत्सरफलंब्रूयात्लोकानांहितकाम्यया ॥ २९७ ॥

अर्थ—और मेषसंक्रांतिके अर्क समयभी स्वरोंके भेद वि-
चारें फिर लोगोंके हितकेवास्ते संवत्सरके फलको कहें ॥ २९७ ॥

पृथिव्यादिकतत्त्वेनदिनमासादिजंफलं ॥

शोभनंचतथादुष्टंव्योममारुतवन्हिभिः ॥ २९८ ॥

अर्थ—पृथ्वी आदि तत्त्वों मेसे महीने दिन आदि संपूर्ण वर्षका फल शुभ जाने और आकाश वायु अग्नि इन तत्त्वोंमें दुष्ट फल जानें ॥ २९८ ॥

सुभिक्षंराष्ट्रवृद्धिस्याद्बहुसस्यावसुंधरा ॥

बहुवृष्टिस्तथासौख्यंपृथ्वीतत्वंवहेद्यदि ॥ २९९ ॥

अर्थ—जो यदि पृथ्वीतत्त्व वहता होवे तो सुभिक्ष हो राज्यकी वृद्धि हो पृथ्वी पै बहुतसी खेती निपजै बहुतसी वर्षा और सुख होवे ॥ २९९ ॥

अतिवृष्टिसुभिक्षंस्यादारोग्यंसौख्यमेवच ॥

बहुसस्यंतथापृथ्वीआपतत्वंवहेद्यदि ॥ ३०० ॥

अर्थ—जलतत्त्व वहता हो तो अतिवर्षा होवे सुभिक्ष होय आरोग्य सुख होवे पृथ्वीपै बहुत घान्य निपजै ॥ ३०० ॥

दुर्मिक्षंराष्ट्रभंगंस्यादुत्पत्तिश्चविनश्यति ॥

अल्पाद्यल्पतरावृष्टिरग्नितत्वंवहेद्यदि ॥ ३०१ ॥

अर्थ—अग्नितत्त्व वहता होय तो दुर्मिक्ष हो राज्यभंग होवे उत्पन्न हुएकानाश बहुत थोड़ी वर्षा बह हाल होताहै ॥ ३०१ ॥

उत्पातोपद्रवाभीतिअल्पवृष्टिस्तुरीतयः ॥

मेषसंक्रांतिवेलायांव्योमतत्वंभवेद्यदि ॥ ३०२ ॥

तत्रापिन्यूनताज्ञेयासस्यादीनांसुखस्यच ॥ ३०३ ॥

अर्थ—जो यदि मेषसंक्रांतिके अर्क समय आकाशतत्त्व वहता होवे तो उत्पात उपद्रव भय स्वल्प वर्षा इति अर्थात् तीड़ीमूंसे लगने आदि छह विकार ये होते हैं और जो आकाशतत्त्व वहता हो तोभी उस वर्षमें खेतीआदिकोंका और सुखका अभाव जानना ॥ ३०२ ॥ ३०३ ॥

पूर्णप्रवेशनेश्वासेसुखंतत्वेनसिद्धिदा ॥

सूर्यचंद्रेन्यथाभूतेसंग्रहःसर्वसिध्यतिः ॥ ३०४ ॥

अर्थ—पूर्णस्वर चलता होय तो तत्त्वोंके क्रमसे सूर्यकी धान्यकी सिद्धि जानना और सूर्यका स्वरमें चंद्रमा तथा चंद्रमाके स्वरमें सूर्य ऐसे विपरीत चलने लगजावें तो अन्नका संग्रह करनेमें लाभ होताहै ॥ ३०४ ॥

विषमेवन्हितत्वेचेतज्ञायतेकेवलंनभः ॥

तत्कुर्याद्वस्तुसंग्राहोद्विमासेचमहर्घता ॥ ३०५ ॥

अर्थ—जो यदि विषम अर्थात् सूर्यस्वरमें अग्नितत्त्व अथवा केवल आकाशतत्त्व चलता होवे तो अन्नआदि वस्तुओंका संग्रह करना दो महीनोंमें मंहगी होवेंगी ॥ ३०५ ॥

रात्रोसंकमतेसूर्यश्चंद्रमंतेप्रसर्पति ॥

रवानिलेवन्हियोगोपिरौरवंजगतीतले ॥ ३०६ ॥

॥ इति संवत्सरप्रकरणं ॥

अर्थ—जो यदि रात्रीको संक्रांतिअर्क होय तब सूर्यस्वर चलताहो और प्रातःकाल चंद्रस्वर चलताहो और इनमें आकाश वायु अग्नि ये तत्त्व बहते होवें तो पृथ्वीतलमें रौरव महादुःख अनर्थ होवें ॥ ३०६ ॥ इति संवत्सर प्रकरणम् ॥

॥ अथरोगप्रकरणं ॥

महीतत्वेस्वरोगंचजलेचजलमातरः ॥

तेजसिग्रामवाटीस्थशाकिनीपितृदोषतः ॥ ३०७ ॥

अर्थ—प्रवृण समय जो पृथ्वीतत्त्व चलता होवे तो उसकी प्रारब्धका रोग कहना जलतत्त्व बहता होवे तो जलकी मातृका देवता ओंका दोष जानना अग्नितत्त्व चलता होवे तो

ग्राम पर्वत आदिमें रहनेवाली शाकिनी अथवा पितरोंका दोष बताना ॥ ३०७ ॥

आदौशून्यगतोदूतःपश्चात्पूर्णेविशेद्यदि ॥

मूर्छितेपिध्रुवंजीवेद्यदर्थपरिपृच्छति ॥ ३०८ ॥

अर्थ—जो यदि पूछनेवाला दूत पहले तो स्वर न चलता हो उस शून्य अंगकी तर्फ आय बैठा हो पीछे पूर्ण अंगकी तर्फ बैठे तो जिस रोगीका प्रष्ण किया हो वह मूर्छित हुआभी रोगी जीवताहै ॥ ३०८ ॥

यस्मिन्नंगेस्थितोजीवः तत्रस्थःपरिपृच्छति ॥

तदाजीवतिजीवोसौयदिरोगैरुपद्रुतः ॥ ३०९ ॥

अर्थ—जो यदि जिस अंगमें जीवस्वर स्थित हो उसी अंगकी तर्फ बैठके पूछे तोभी सेकड़ों रोग उपद्रवोंसे युक्त हुआभी रोगी जीवताहै ॥ ३०९ ॥

दक्षिणेनयदावायुर्दूतोरौद्राक्षरोवदेत् ॥

तदाजीवतिजीवेसौचंद्रेसमफलंभवेत् ॥ ३१० ॥

अर्थ—जो यदि दहिनास्वर चलता हो और दूत भयानक वचन बोले तो वह रोगी जीवेगा और चंद्रस्वर हो तोभी समान फल कहै ॥ ३१० ॥

जीवाकारंचवाधृत्वाजीवाकारंविलोक्यच ॥

जीवस्थोजीवितप्रश्नेतस्यस्याजीवितंफलं ॥ ३११ ॥

अर्थ—अथवा जोदूत जीवाकारको धारण करके और जीवाकारको देखकर जीवमें स्थित हुआ प्रष्ण करे तो उसको जीवनेका फल कहै ॥ ३११ ॥

वामस्वरेतदादक्षःप्रवेशेयत्रवाहने ॥

तत्रस्थंपृच्छतेदूतःतस्यासिद्धिर्नसंशयः ॥ ३१२ ॥

अर्थ—वामास्वर अथवा दाहिनास्वर जो भीतरको प्रवेश होते समय जो दूत प्रण करे तो उस रोगीका आच्छाहोना जानना ॥ ३१२ ॥

प्रश्नेचाधःस्थितोजीवोन्ननंजीवोहिजीवति ॥

उर्ध्वचारःस्थितोजीवोजीवोयातियमालयं ३१३

अर्थ—प्रण समय स्वर नीचेको चलता हो तो अवश्य रोगी जीवताहै और स्वर ऊपरको संचारवाला होवे तो वह रोगी निश्चय धर्मराजके स्थानमें प्राप्त होताहै ॥ ३१३ ॥

विपरीताक्षरंप्रश्नेरिक्तायांपृच्छकोयदि ॥

विपर्ययंचविज्ञेयंविषमप्योदयेसति ॥ ३१४ ॥

अर्थ—जो यदि दूत प्रण समय विपरीत अक्षर उच्चारणा करे और पूछनेवाला रिक्तानाडीकी तर्फ स्थित हो और विषम मुष्णानाडीका प्रवाह होवे तो विपरीत फल जानना ३१४

चंद्रस्थानेस्थितोजीवःसूर्यस्थानेचपृच्छकः ॥

तदाप्राणविमुक्तोसौयदिवैद्यशतैर्वृतः ॥ ३१५ ॥

अर्थ—जो यदि अपना जीव प्राणवायु चंद्रमाके स्थानमें होवे और पृच्छकका सूर्य स्थानमें होवे तो सैंकड़ों वैद्योंसे युक्त हुआभी रोगी नहीं जीवता ॥ ३१५ ॥

पिंगलायास्थितोजीवेवामेदूतस्तुपृच्छति ॥

तदापिमृत्यतेरोगीयदित्रातामहेश्वरः ॥ ३१६ ॥

अर्थ—जो यदि पिंगलास्वर चलता हो और दूत वामें भागमें बैठा होवे तो शिवजी रक्षा करनेवाला होय तोभी रोगी मरताहै ॥ ३१६ ॥

एकस्यभूतस्यविपर्ययेणरोगाभिभूतिर्भवतीहपुं

सां ॥ तयोर्द्वयोर्बन्धुसुहृद्विपत्तिःपक्षद्वयेव्यत्यय
तोमृतिस्यात् ॥ ३१७ ॥

अर्थ—एक तत्त्वके विपरीत होनेसे पुरुषोंको रोग त्रास
देताहै और दो तत्त्वोंके विपरीत होनेसे बन्धु मित्रोंकी विपत्ति
होती है और एक महीनातक विपरीत तत्त्व रहें तों मृत्यु
होती है ॥ ३१७ ॥ ॥ इति रोग प्रकरणम् ॥

॥ अथकालज्ञानं ॥

मासादौवत्सरादौचपक्षादौचयथाक्रमं ॥

क्षयकालंपरीक्षेतवायुचारवशात्सुधीः ॥ ३१८ ॥

अर्थ—पंडितजन महीनेकी आदिमें पक्षकी वर्षकी आदिमें
क्रमसे स्वरचारके वशसे मरण समयकी परीक्षा करें ॥ ३१८ ॥

पंचभूतात्मकंदीपंशिवस्नेहेनसिंचितं ॥

रक्षेतसूर्यवातेनतैनजीवस्थिरोभवेत् ॥ ३१९ ॥

अर्थ—यह पंचभूतात्मक दीप देह शिवरूपी श्वासरूपी
तेलसे सींचाहुआहै इसको सूर्यस्वर वायुसे जो रक्षित कर-
ताहै वह प्राणी स्थिर हुआ जीवताहै ॥ ३१९ ॥

मारुतंबंधयित्वातुसूर्यबंधयतेयदि ॥

अभ्यासाज्जीवतेजीवऽसूर्यकालेपिवंचिते ॥ ३२० ॥

अर्थ—जो यदि प्राणवायुको बंधकरके दिनभर सूर्यस्वरके
बंद करताहै ऐसे अभ्याससे सूर्य कालको टालनेवाला वह
योगी बहुत कालतक जीवताहै ॥ ३२० ॥

गगनात्स्रवतेचंद्रःकायापद्मानिसिंचयेत् ॥

कर्मयोगसदाभ्यासैरमरःशशिसंश्रयात् ॥ ३२१ ॥

अर्थ—ऐसे अभ्यासवाले योगीके चंद्रमा गगन अर्थात्

मस्तक मांहसे अमृतको गिराताहै फिर शरीररूपी कम-
लोंको सींचताहै ऐसे कर्मयोगके अभ्याससे चंद्रमाके आश्रय
होनेसे योगी अमर होताहै ॥ ३२१ ॥

शशांकंवारयेद्रात्रोदिवावार्योदिवाकरः ॥

इत्यभ्यासरतोनित्यंसयोगीनात्रसंशयः ॥३२२॥

अर्थ—जो रात्रीमें चंद्रस्वरको निवारण करताहै और दिनमें
सूर्यस्वरके निवारण करताहै ऐसे अभ्यासवाला जन उत्तम
योगी है इसमें संदेह नहीं ॥ ३२२ ॥

अहोरात्रेयदैकत्रवहतेयस्यमारुतः ॥

तदातस्यभवेन्मृत्युःसंपूर्णैवत्सरद्वये ॥ ३२३ ॥

अर्थ—जिस पुरुषका श्वास राति दिन एकस्वरमेही चल-
ता हो तो उसका मृत्यु तीन वर्षमें होवे ॥ ३२३ ॥

अहोरात्रेद्वयंस्यपिंगलायांसदागतिः ॥

तस्यवर्षद्वयंप्रोक्तंजीवितंतत्त्ववेदिभिः ॥ ३२४ ॥

अर्थ—जिस पुरुषका श्वास दो दिनतक पिंगलानाडीमें
रहै उसकी आयु तत्त्ववेत्ता जनोंने दो वर्षकी कहीहै ॥३२४॥

त्रिरात्रेवहतेयस्यवायुरेकपुटेस्थितः ॥

तदासंवत्सरायुष्यंप्रवदंतिमनीषिणः ॥ ३२५ ॥

अर्थ—तीन रात्रीतक जिसकी वायु एकही नासिकापुटमें
वहै उसकी एक वर्षकी आयु पंडितजन कहतेहै ॥ ३२५ ॥

रात्रौचंद्रोदिवासुर्योवहेयस्यानिरंतरं ॥

जानीयात्तस्यवैमृत्युःषण्मासाभ्यंतरेभवेत् ॥३२६॥

अर्थ—जिसके निरंतर रात्रीमें चंद्रस्वर चले और दिनमें
सूर्यस्वर चले उसकी छह महीनों भीतर मृत्यु जाननी ॥३२६॥

लक्षंलक्षतिलक्षणेनसलिलंभानुर्यदादृश्यतेक्षीणे
दक्षिणपश्चिमोत्तरपुरःषदत्रिद्विमासैकृतः ॥
मध्येछिद्रमिदंभवेद्दशदिनंधूमाकुलंतद्दिनेसर्व
ज्ञैरपिभाषितंमुनिवरैराःयुप्रमाणंस्फुटं ॥ ३२७ ॥

अर्थ—कांसेके पात्रमें ढालेहुए जलमें सूर्यका बिंब दिखा-
नेकी विधि कहतेहैं—जिसको सूर्यका बिंब जलमें दक्षिण,
पश्चिम, उत्तर पूर्व इन दिशाओंमें खंडित हुआ दीखे तो
क्रमसे छह तीन दो एक महीनोंमें उसकी मृत्यु होतीहै
और दित सूर्यबिंब के मध्यमें छिद्र दीखे तो दश दिनमेंमृत्यु
हो धूमांसे आच्छा दित दीखे तो उसी दिन मृत्यु होवें ऐसे
सर्व मुनिजनोंने आयुका प्रमाण स्फुट कहा है ॥ ३२७ ॥

दूतोरक्तकषायकृष्णवसनोदंतक्षतोमुंडितोतैला
भ्यक्तशरीररज्जुककरीदीनश्चपूर्णाननः ॥ भस्मां
गारकपालपांशुमुसलीसूर्यास्तमायातियःशून्य
श्वासदिशिस्थितोगदयुतःकालानलःस्यादसौ ॥

अर्थ—जो यदि रोगीके प्रष्ण करनेवाला दूत लाल, क-
षाय काले वस्त्र पहिने हुए हो अथवा दूटे हुए दांतोवाला मुं-
डन करायें हुए तेल लगायें हुएहो अथवा हाथमें रस्सी ले
रहा है दीन तथा जुवावदेनेमें निपुण भस्म अंगार कपाल
मूसल इनको ले रहा हो सूर्यअस्त होनेके समय आवे और
जो नसा स्वर न चलता हो उसतर्फ आयके बैठे रोगयुक्त
ऐसा यह दूत काल अग्निके समान है ॥ ३२८ ॥

अकस्माच्चित्तविकृतिरकस्मात्पुरुषोत्तमः ॥

अकस्मादिन्द्रियोत्पातःसन्निपाताग्रलक्षणं॥३२९

अर्थ—जिस रोगीका अचानक चिन्त बिगड़ जाय और अचानकसेही उत्तम पुरुष हो जाय अचानकही जिसके इंद्रियोंमें उत्पात हो तिसके संनिपातके पूर्वरूप लक्षण जानना ॥ ३२९ ॥

शरीरंशीतलंयस्यप्रकृतिर्विकृतीभवेत् ॥

तदारिष्टंसमासेनव्यासक्तस्तुनिबोधमे ॥ ३३० ॥

अर्थ—जिसका शरीर शीतल होवे और स्वभाव विगड़ जावे वह संक्षेपसे हुआ अरिष्ट विस्तार पूर्वक मुजसे सुनो ३३०

दुष्टशब्देषुरमते शुद्धशब्देषुचाप्यति ॥

पश्चात्तापोभवेद्यस्यतस्यमृत्युर्नसंशयः ॥ ३३१ ॥

अर्थ—जो पुरुष दुष्ट शब्दों २ शब्द कहै और शुद्ध, अच्छे शब्द भी कहै पश्चात्ताप करै ऐसा पुरुषकी मृत्यु होतीहै इसमें संदेह नहींहै ॥ ३३१ ॥

हुंकारःशीतलोयस्यफूत्कारोवन्धिसंनिभः ॥

महादाहोभवेद्यस्यतस्यमृत्युर्भवेत्ध्रुवं ॥ ३३२ ॥

अर्थ—जिसका हुंकार ठंडा होय और फूत्कार अग्निके समान हो उसके महान् वैद्य रक्षा करनेवाला हो तोभी निश्चय उसकी मृत्यु होतीहै ॥ ३३२ ॥

जिह्वांविष्णुपदंध्रुवंसुरपदंसन्मातृकामंडलमेता

न्येवमरुंधतीममृतगुंशुक्रंध्रुवंवाक्षणम् ॥ एतेष्वे

कमपिस्फूटनपुरुषःपश्यत्पुरःप्रेषितःसोऽवश्यंविश

तीहकालवदनंसंवत्सरादूर्ध्वतः ॥ ३३३ ॥

अर्थ—जोपुरुष जिह्वा आकाश ध्रुग, देवतोंका मार्ग मातृका मंडल अरुंधती चंद्रमा, शुक्र अगस्ति इनमांहसे एकको

कष्टसेभी नहीं देखे वह रोगी वर्ष दिनके अनंतर निश्चय मृत्युको प्राप्त होता है ॥ ३३३ ॥

अरश्मिर्विबंसूर्यस्यवन्हेःशीतांशुमालिनः ॥

दृष्ट्वेकादशमासायुनिश्चितोर्ध्वनजीवति ॥ ३३४ ॥

अर्थ—जिस पुरुषको सूर्य चंद्रमाके बिंबकी किरण न दिखे और अग्निकोभी तेजरहित देखे ऐसा पुरुष ग्यारहमहीने पीछे नहीं जीवता है ॥ ३३४ ॥

वाप्यांपुरीषमूत्रेयःसुवर्णरजतंतथा ॥

प्रत्यक्षमथवास्वमेदशमासंनजीवति ॥ ३३५ ॥

अर्थ—जो मनुष्य सुपनेमें अथवा जाग्रत अवस्थामें बाव-डीमें मलमूत्र चांदी सुवर्ण इनको देखे वह दश महीनेके अनंतर नहीं जीवता है ॥ ३३५ ॥

क्वचित्पश्यतियोदीपंसुवर्णंश्याममेववा ॥

विपरीतानिभूतानिनवमासंनजीवति ॥ ३३६ ॥

अर्थ—जो मनुष्य दीपकको कभी तो सुवर्ण सरीखा कांतिवाला देखे कभी कृष्णवर्ण देखे सब भूतोंको विपरीत देखे वह नव महीनेतक नहीं जीवता है ॥ ३३६ ॥

स्थूलांगोपिकृशःकृशोपिसहसास्थूलत्वमालंबते

प्राप्तोवाकनकप्रभांयदिभवेत्तरोगेपिकृष्णच्छवि ॥

शूरोभीरुसुधीरधर्मनिपुणःशांतोविकारीपुमा

नित्येवंप्रकृतीरुशंतिचलनंमासाष्टमेसुंदरि ॥ ३३७ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यकी प्रकृति ऐसे चलायमान हो जावे की स्थूल अंगवालाभी कभी माडा हो जावे माडा अंगवाला कभी स्थूल हो जावे और जो क्रूर तथा कृष्णवर्णवाला हो वहभी रोगी अचानक सुवर्ण सरीखे वर्णवाला हो जावे

कभी शूर वीर होके डरपोक हो जावे और सुंदर धीरजवाला धार्मिक शांत हो फिर विकारवान् हो जाय ऐसा वह पुरुष आठ महीनोंतक जीवता है ॥ ३३७ ॥

पीडाभवेत्पाणितलेचजिह्वामूलंसमूलंरुधिरंचकृ
ष्णा ॥ विद्धेनचग्लायतियत्रदृष्ट्याजीवेन्मनुष्यः
सहिसप्तमासान् ॥ ३३८ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी हथेलीमें और जिह्वाके मूलमें पीडा होवे रुधिर कालाहोजाय और जिसके शरीरमें सूई आदिच भोंनेकी पीडा नहीं मालूम होवे ऐसा मनुष्य सातही मही-
नोंतक जीवता है ॥ ३३८ ॥

मध्यांगुलीनां त्रितयं न वक्रं रोगं विनाशुष्यति
यस्य कंठः ॥ मुहुर्मुहुः प्रश्नवशेन जाड्याषड्भिः
समासैः प्रलयं प्रयाति ॥ ३३९ ॥

अर्थ—जिसका मध्यकी तीन अंगुली मुड़ें नहीं रोगके बिनाही जिसका कंठ सुखजावे और बारंवार पूछी हुई बातसे जडता कलु स्मरण नहीं रहै ऐसा पुरुष छह महीनोंमें मर जातहै ॥ ३३९ ॥

नयस्य स्मरणं किंचिद्विद्यते स्तनचर्मणि ॥

सो वश्यं पंचमेमासि स्कंधारूढो भविष्यति ॥ ३४० ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी स्तनोंकी त्वचा बधिर होजावे वह निश्चय पांच महीनोंतक स्कंधारूढ होगा अर्थात् मरेगा ३४०

यस्य नस्फुरते ज्योतिः पीडिते नयनद्वये ॥

मरणं यस्य निर्दिष्टं चतुर्थे मासि निश्चितं ॥ ३४१ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी आंखोंकी ज्योति प्रकाश न हो और दोनों नेत्रोंमें पीडा रहै वह अवश्य चौथे महीनेमें मरे-
गा यह जानो ॥ ३४१ ॥

दंताश्रवृषणौयस्यनकिंचिदपिपीडयते ॥

तृतीयेमासिसोवश्यंयमलोकंगमिष्यति ॥३४२॥

अर्थ—जिसके दांत और वृषण दाबनेसे पीडीत न हो बाधिर होजावे ऐसा वह पुरुष तीन महीनोंमें मरताहै ॥ ३४२ ॥

तारागणंपश्यतियोविरूपांयोनध्रुवंपश्यतिखेनि
शायाम् ॥ इंद्रायुधंवास्वयमेवरात्रौमासद्वये
तस्यवदंतिनाशं ॥ ३४३ ॥

अर्थ—जो पुरुष रात्रीमें तारा गणोंको अच्छी तरह प्रकाशित नहीं देखे और जो ध्रुवको नहीं देखे अथवा आपही रात्रीमे इंद्र धनुषको देखे वह दो महीनोंमें मरताहै ॥ ३४३ ॥

पादजानुगतंकर्मनकिंचिदपिचेष्टितम् ॥

मासांतेचमृतिस्तस्यकेनापिनविलंघ्यते ॥३४४॥

अर्थ—जो पैरोंमें तथा गोडोंमें प्राप्त हुए कर्मकी कलुभी चेष्टा न करे उसकी एकही महीनामें मृत्यु होती है किसी प्रकारसे देरी नहीं होती ॥ ३४४ ॥

कनिष्ठांगुलिपर्वाणिकृष्णस्यान्मध्यमंयदा ॥

तदायुःप्रोच्यतेपुंसांमष्टादशदिनावधि ॥ ३४५॥

अर्थ—जिसके कनिष्ठ अंगुलीकी पुरी अथवा मध्यमा अंगुली काली हो जावे तिस पुरुषकी अठारह दिनकी आयु कहै ॥ ३४५ ॥

घृतेतैलेजलेवापिदर्पणेयस्तुपश्यति ॥

शिरोरहितमात्मानंपक्षमेकंसजीवति ॥ ३४६ ॥

अर्थ—जो पुरुष घृतमें तेलमें अथवा दर्पणमें अपने शरीरको शिर रहित देखे वह पंद्रह दिनतक जीवताहै ३४६

शैत्यंविदध्यात्तपनोपियस्यसंतापकारीकिलशी
तरश्मी ॥ नज्ञायतेचेतुहिमंनचोष्णंसपक्षमेकंख
लुतिष्ठतीह ॥ ३४७ ॥

अर्थ—जिसको सूर्यसेभी ठंडक लगे और चंद्रमासे गरमी
मालूम होवे शीतल वा गरम वस्तुको नहीं पिछाने वह पंद-
रह दिनतक जीवताहै ॥ ३४७ ॥

स्नानमात्रस्ययस्यैतेत्रयःशुष्यंतितत्क्षणात् ॥
तद्वदयंहस्तपादौचदशरात्रंसजीवति ॥ ३४८ ॥

अर्थ—स्नानमात्र करतेही जिसके हाथ पैर हृदा ये तीन
वस्तु सूख जावें वह दश दिनतक जीवताहै ॥ ३४८ ॥

स्वरूपंपरनेत्रेत्तुपुत्तिकायांनपश्यति ॥
यदासच्छिन्नदृष्टिश्चतदामृत्युर्नसंशयः ॥ ३४९ ॥

अर्थ—जो पुरुष अपने रूपको दूसरेके नेत्रकी पुतलि-
योंमें नहीं देखताहै ऐसा छिन्न दृष्टिवाला पुरुष शीघ्रही
मरताहै इसमें संशय नहीं ॥ ३४९ ॥

अथातःसंप्रवक्षामिछायापुरुषलक्षणं ॥
येनविज्ञानमात्रेणत्रिकालज्ञोभवेन्नरः ॥ ३५० ॥

अर्थ—अब छायापुरुषके लक्षणको कहेंगे इसके जाननेसे
मनुष्य त्रिकालज्ञ होताहै ॥ ३५० ॥

कालोदूरस्थितोवापियेनोपायेनलक्ष्यते ॥
तंवदामिसमासेनयथादिष्टंशिवागमे ॥ ३५१ ॥

अर्थ—दूर स्थित हुआ काल जिस उपायसे जानाजाताहै
तिस उपायको शिवशास्त्रमे अर्थात् कहेहुएको संक्षेपसे
कहते है ॥ ३५१ ॥

एकांतंविजनंगत्वाकृत्वादित्यंचपृष्ठतः ॥ निरी
क्षयेनिजछायांकंठदेशेसमाहितः ॥ ३५२ ॥

अर्थ—एकांत वनमें जाके सूर्यको पीठ पीछे कर सावधान
हो अपनी छायाको कंठदेशमें देखे ॥ ३५२ ॥

ततश्चाकाशमीक्षेतर्हीपरब्रह्मणेनमः ॥

अष्टोत्तरशतंजप्त्वाततःपश्येतशंकरं ॥ ३५३ ॥

अर्थ—फिर आकाशमें देखें ऋषीपरब्रह्मणेनमः इस मंत्रका
अष्टोत्तर शत १०८ जप करके पीछे शिवजीको देख
लेताहै ॥ ३५३ ॥

शुद्धस्फटिकसंकाशंनानारूपधरंहरं ॥

षण्मासाभ्यासयोगेनभूचराणांपतिर्भवेत् ॥

वर्षद्वयेनहेनाथकर्ताहर्तास्वयंप्रभुः ॥ ३५४ ॥

अर्थ—शुद्ध, सफेद मणिके समान कांतिवाले, अनेक
रूपधारी महादेवको छह महीनोंके अभ्यास योगसे देखनेसे
भूचर प्राणियोंका पति हो जाताहै और ऐसेही दो वर्ष अ-
भ्यास करनेसे आपही कर्ता हर्ता प्रभु हो जाताहै ॥ ३५४ ॥

त्रिकालज्ञत्वमाप्नोतिपरमानंदमेवच ॥

संतताभ्यासयोगेननास्तिकिंचित्सुदुर्लभं ॥ ३५५ ॥

अर्थ—निरंतर अभ्यास योग करनेसे त्रिकालज्ञ होताहै
और परमानंदको प्राप्त होताहै तिसको कछुभी दुर्लभ
नहीं है ॥ ३५५ ॥

तद्रूपंकृष्णवर्णायपश्यतिव्योम्निनिर्मले ॥

षण्मासान्मृत्युमाप्नोतिसयोगीनात्रसंशयः ॥ ३५६ ॥

अर्थ—जो योगी तिस महादेवके रूपको निर्मल आका-

शमें कृष्णवर्ण देखें वह छह महीनों भीतर मरताहै इसमें
संदेह नहीं ॥ ३५६ ॥

पीतेव्याधिभयंरक्तेनीलेहानिविनिर्दिशेत् ॥

नानावर्णःस्वसिद्धश्चगीयतेचमहात्मनः॥३५७॥

अर्थ—पीतवर्ण देखे तो व्याधि होवे लालमें भय नीलेमें
हानि जानना और जो अनेक प्रकारके वर्ण दीखें तो वह
योगी सिद्धियोंको प्राप्त होता है ॥ ३५७ ॥

पदेगुल्फेचजठरेविनाशोक्रमशोभवेत् ॥

विनश्यतोयदाबाहोस्सजंतुर्म्रियतेध्रुवं ॥ ३५८ ॥

अर्थ—जो यदि छायामें पैर घुटने उदर इनको नहीं देखे
तों अथवा दोनों भुजा कटी दीखें तो निश्चय आप
मरताहै ॥ ३५८ ॥

वामबाहुतथाभार्याविनश्यतिनसंशयः ॥

दक्षिणेबंधुनाशोहिमृत्युर्मासेविनिर्दिशेत् ॥ ३५९ ॥

अर्थ—बायाँ भुजा कटी दीखे तो स्त्री मरे दहीनी भुजा
कटी दीखे तो एक महीने भीतर बंधु मरे ॥ ३५९ ॥

अशिरोमासमरणंविनाजंघेदिनाष्टकं ॥

अष्टभिस्कंधनाशेनछायालोपेनतत्क्षणात् ॥ ३६० ॥

अर्थ—शिर नहीं दीखे तो प्राण एक महीनामें मरे जंघा
नहीं देखे तो आठही दिनमें मरे और जो कंधे नहीं दीखें
तोभी आठ दिनमें मरे संपूर्ण छायाका लोप हो जावे तो
उसी दिन मृत्यु जानना ॥ ३६० ॥

प्रातःपृष्ठगतेरवोचनिमिषंच्छायांगुलीमंतरादृष्ट्वार्धं
नमृतिस्त्वनंतरमहोछायानरंपश्यति ॥ तत्कर्णांस

करास्यपार्श्वहृदयाभावेक्षणार्धात्स्वयं दिङ्मूढो
हिनरःक्षिरोविगमतोमासांस्तुषट्जीवति॥३६१॥

अर्थ— प्रातःकाल सूर्यको पीठ पीछे कर छायाको देखे
तहां अंगुलियोंको नहीं देखे तो एक निमिषमें मृत्यु होवे और
जो छायाको तथा अंगुलीको नहीं देखे तो आधा क्षणमेंही
मरे जो छाया पुरुषके कान कंधे हात मुख पांशु हृदा इनको
नहीं देखे तो आधे क्षणमें मृत्यु होगी जो शिर नहीं दीखे
तथा दिशाओंका ज्ञान नहीं रहे तो छह महीनोतक जीवता
है ॥ ३६१ ॥ इति छाया पुरुष लक्षणसं० ॥

एकादिषोडशाहानियदिभानुनिरंतरं ॥

वहेद्यस्यचवैमृत्युःशेषाहेनचमासके ॥ ३६२ ॥

अर्थ—जिस पुरुषका नियमसे एक दिनसे लेके सोलह
दिनपर्यंत सूर्यस्वरही चलता रहे उसकी पंद्रह दिनमें मृत्यु
होती है यह कालज्ञानमें कहा है ॥ ३६२ ॥

संपूर्णोवहतेसूर्यश्चन्द्रमानैवदृश्यते ॥

पक्षेणजायतेमृत्युःकालज्ञानेनभाषितं ॥ ३६३ ॥

अर्थ—जिस पुरुषके सदा सूर्यस्वरही चले चंद्रमा कभी
नहीं दीखे उसकी पंद्रह दिनमें मृत्यु होती है ऐसा काल-
ज्ञानमें कहा है ॥ ३६३ ॥

मूत्रंपुरीषंवायुश्चसमकालंप्रवर्तते ॥

तदासौचलितोज्ञेयोदशाहेम्रियतेध्रुवं ॥ ३६४ ॥

अर्थ—जिस पुरुषका मलमूत्र वायु एकही वार निकसे तो
वह चलित जानना दश दिनमें निश्चय मरता है ॥ ३६४ ॥

संपूर्णवहतेचंद्रःसूर्योनैवचदृश्यते ॥

मासेनजायतेमृत्युःकालज्ञानेनभाषितं ॥ ३६५ ॥

अर्थ—जो निरंतर चंद्रमाकास्वर चलताहो सूर्यस्वर नहीं चलता होवे तो एक महीनेमें मृत्यु होतीहै ऐसे कालज्ञान वालोंने कहाहै ॥ ३६५ ॥

अरुंधतिंध्रुवंचैवतत्रीयांविष्णुपत्तथा ॥ आयुर्ही
नानपश्यंतिचतुर्थमातृमंडलं ॥ ३६६ ॥

अर्थ—अरुंधती ध्रुव तीसरा विष्णुपद, चौथा मातृमंडल इनको आयुहीन पुरुष नहीं देखते है ॥ ३६६ ॥

अरुंधतीभवेजिह्वाध्रुवोनासाग्रमेवच ॥

भ्रुवौविष्णुपदंज्ञेयंतारकंमातृमंडलं ॥ ३६७ ॥

अर्थ—जिह्वा अरुंधती है नासिकाका अग्रभाग और भ्रुवां-
को विष्णुपद कहतेहैं ताराओंको मात्रमंडल जानना ॥ ३६७ ॥

नवभ्रुवंसप्तघोषंपंचतारांत्रिनासिकां ॥

जिह्वामेकदिनंप्रोक्तंम्रियतेमानवोध्रुवं ॥ ३६८ ॥

अर्थ—भ्रुकुटी न देखे तो नव दिन कानोकेअंदरका शब्द न सुने तो सात दिन तारा न देखे तो पांच दिन नासिका न देखे तो तीन दिन जिह्वा न देखे तो एक दिन मनुष्यका मरण समय कहाहै ॥ ३६८ ॥

कोणमक्ष्णोरंगुलीभ्यांकिंचित्पीडयनिरीक्षयेत् ॥

ययानदृश्यतेबिंदुर्दशाहेनभवेन्मृतिः ॥ ३६९ ॥

अर्थ—आखोंके कोईयोंको अंगुलियोंसे कछु दबाके देखै जो यदि मसलके दबानेसे आंखमांहसे जलकी बिंदु न निकले तो दश दिन भीतर मृत्यु जाननी ॥ ३६९ ॥

तीर्थस्नानेनदानेनतपसासुव्रतेनवा ॥

जपैर्ध्यानेनयोगेनजायतेकालवंचना ॥ ३७० ॥

अर्थ—तीर्थोंका स्नान दान तप सुकृत जप ध्यान योग इन्हों करके काल वंचन दृष्ट सकताहै ॥ ३७० ॥

शरीरं नाशयंत्येते दोषा धातुमलस्तथा ॥

समस्तवायुर्विज्ञेयो बलतेजोविवर्द्धनः ॥ ३७१ ॥

अर्थ—धातु तथा मलआदि दोष शरीरको नष्ट करतेहैं और समस्त प्राणआदि वायु बल तथा तेजको बढ़ानेवाले जानने ॥ ३७१ ॥

रक्षणीयस्ततो देहो यतो धर्मादिसाधनम् ॥

रोगा जाप्यत्वमायां तिसाध्या जाप्यस्त्वसाध्यतां ॥

आसाध्या जीवितं घ्नन्ति न तत्रास्ति प्रतिक्रिया ॥ ३७२ ॥

अर्थ—जो कि यह देह धर्मादिकोंको सिद्ध करनेवालाहै इसलिये यह देह रक्षित करनाही योग्यहै शरीरके साध्य रोगोंकी चिकित्सा न की जावे तो वे जाप्य, हो जाते हैं जाप्य संसक रोग चिकित्सा किये बिना असाध्य हो जातेहैं फिर वे असाध्य रोग जीवनको नष्ट कर देतेहैं उनकी कलु चिकित्सा नहीं है ॥ ३७२ ॥

येषां हृदि स्फुरन्ति शास्त्रतमं द्वितीयास्ते जस्तमो निव

हनाशकरं रहस्यं ॥ तेषामखंडशशिरम्यसुकांतिभा

जां स्वप्नेऽपि नो भवति कालभयं नराणां ॥ ३७३ ॥

अर्थ—जिन पुरुषोंके हृदयसे सनातन अद्वितीय, तमोगुणके समूहको नाश करनेवाला रहस्य स्वरोदयज्ञान फुरताहै पूर्णचंद्रमाके समान कांतिवाले तिन पुरुषोंको सुपनेमेंभी कालका भय नहीं होताहै ॥ ३७३ ॥

॥ अथ नाडीज्ञानं ॥

इडा गंगेति विज्ञेयाऽपि गलाय मुनानदी ॥

मध्येसरस्वतीविद्यात्प्रयागादिसमंतथा ॥३७४॥

अर्थ—इडानाडी गंगास्वरूप जाननी पिंगला यमुना नदी जाननी मध्यमें सुषुम्णा सरस्वती जाननी इन तीन नाडी-योंके समागमको प्रयाग जानना ॥ ३७४ ॥

आदौसाधनमाख्यातंसद्यःप्रत्ययकारकम् ॥

बद्धपद्मासनयोगीबंधयेडुडियानकं ॥ ३७५ ॥

अर्थ—पहले साधनही तात्काल निश्चयका कारण कहाहै इसलीये योगीजन पदमासन बांधके उड्डियानक आसनको बांधै अर्थात् अपानवायुंको ऊपरको चढावे ॥ ३७५ ॥

पूरकःकुंभकश्चैवरेचकश्चतृतीयकः ॥

ज्ञातव्योयोगिभिर्नित्यंदेहसंसिद्धिहेतवे ॥३७६॥

अर्थ—पूरक कुंभक तीसरा रेचक ऐसे ये तीन प्राणायाम योगीजनकोनित्यप्रति देहकीशुद्धिकेवास्ते जानने चाहिये ७६

पूरकःकुरुतेपुष्टिःधातुसाम्यंतथैवच ॥

कुंभकेस्तंभनंकुर्याज्जीवरक्षाविवर्धनं ॥ ६७७ ॥

अर्थ—पूरक प्राणायाम बाहिरकी वायुको भीतरको खींच ताहै तब पुष्टि अर्थात् देहको पोषताहै और धातुओंको समान करताहै कुंभकमें वायुका धारण करना याने वायु बंद रखनी इससे जीवकी रक्षाकी वृद्धि होती है ॥ ३७७ ॥

रेचकोहरतेतापंकुर्याद्योगपदं व्रजेत् ॥

पश्चात्संग्रामवत्तिष्ठेल्लयबंधंचकारयेत् ॥ ३७८ ॥

अर्थ—रेचकमें बाहिरकी वायु छोड़ी जातीहै यह प्राणायाम पापको हरताहै ऐसे प्राणायाम करनेवालेको योगपद

की प्राप्ति होती है ऐसे प्राणायाम कर पीछे समान रूपसे स्थित रहै ऐसा योगी मृत्युको बंद करता है ॥ ३७८ ॥

कुंभयेत्सहजंवायुंयथाशक्तिप्रकल्पयेत् ॥

रेचयेच्चंद्रमार्गेणसूर्येणापूरयेत्सुधीः ॥ ३७९ ॥

अर्थ—अपने स्वाभाविक प्राणवायुको अपनी शक्तिके अनुसार कुंभक प्राणायाममें रोकै और चंद्रमाके स्वर करके वायुको छांडै सूर्यके स्वरसे चढ़ावे ॥ ३७९ ॥

चंद्रपिबतिसूर्यश्चसूर्यपिबतिचंद्रमाः ॥

अन्योन्यकालभावेनजीवेदाचंद्रतारकं ॥ ३८० ॥

अर्थ—जो चंद्रमाके स्वरमें सूर्यस्वरको चलाने लगजावे और सूर्यस्वर चलते समय चंद्रमाका स्वर चलाने लगजावे ऐसा योगीजन परस्पर स्मरके कालका अभाव होने करके चंद्रमा तथा तारागणोंकी स्थिति रहे तबतक जीवता है ३८०

स्वीयांगेवहतेनाडीतन्नाडीरोधनंकुरु ॥

मुखबंधममुंचन्वैपवनंजायतेयुवा ॥ ३८१ ॥

अर्थ—जो योगीजन जोनसास्वर चलताहो उस नाडी-स्वरको बंदकर मुखको बंदकर वायुको नहीं छोड़ता रहता है वह, वृद्धभी जुवान हो जाता है ॥ ३८१ ॥

मुखनासाक्षिकर्णानामंगुलीभिर्निरोधयेत् ॥

तत्त्वोदयमितिज्ञेयंसन्मुखीकरणंप्रिये ॥ ३८२ ॥

अर्थ—मुख नासिका नेत्र कान इनको अंगुलियों करके रोकै इसीको तत्त्वोदय और प्रिय षण्मुखीकरण जानना ३८२

तस्यरूपंगतीखेदोमंडलंदक्षिणांत्विदं ॥

योवेत्तिमानवोलोकेसंसर्गादिपिमार्गवित् ॥ ३८३ ॥

अर्थ—उस योगीका लक्षण यह है कि वह योगी तत्त्वोंका रूप गति स्वाद मंडल इनसाबोंके जानताहै और तत्त्वोंके संसर्ग, मिलापके मार्गकोभी जानताहै ॥ ३८३ ॥

निराशीनिष्फलयोगीनकिंचिदपिचितयेत् ॥

वासनामुन्मनांकृत्वाकालंजयतिलीलया ॥ ३८४ ॥

अर्थ—जो आशारहित निष्पाप योगी कलुभी वासना चितवन नहीं करताहै वह योगी अपनी लीला क्रीडासेहीत कालको व्यतीत करता है ॥ ३८४ ॥

विश्वस्ववेदिकाशक्तिर्नेत्राभ्यांपरिदृश्यते ॥

तत्रस्थंतुमनोयस्ययाममात्रंभवेदिह ॥ ३८५ ॥

अर्थ—तहां समाधिमें जिस योगीका मन एक प्रहर ठहर ताहै उसको संपूर्ण जगत्को जाननेकी शक्ति नेत्रोंसे होतीहै ॥ ३८५ ॥

तस्यायुर्वर्धतेनित्यंघटिकात्रयमानतः ॥

शिवेनोक्तंपुरातंत्रेसिद्धस्यगुणगव्हरे ॥ ३८६ ॥

अर्थ—उस योगीकी नित्यप्रति तीन घटी प्रमाण आयु बढ़तीहै यह पहले सिद्धोंके गूणगव्हर तंत्रमें शिवजीने कहीहै ॥ ३८६ ॥

बद्धंपद्मासनस्थंगुदगतपवनंसंनिरुव्याधिमुच्चैः

तंतस्यापानरंध्रेक्रमजितमनिलंप्राणशक्त्यानिरु

ध्य॥ एकीभूतंसुषुम्णाविवरमुपगतंब्रह्मरंध्रेचनी

त्वानिक्षिप्याकाशमार्गेशिवचरणरतायांतितेके

पिधन्याः ॥ ३८७ ॥

अर्थ—योगीजन पद्मासनको बांधके पीछे गुदामें स्थित

हुए अपान वायुको रोकके ऊपरको लेजाय अपानरंध्रमें क्रमसे जीती हुई तिस वायुको प्राणशक्तिसे रोकके दोनुवोंकी एक गतिकर मुष्णानाडीके छिद्रमें प्राप्तकर पीछे ब्रह्मरंध्रमें प्राप्तकर पीछे शिवचरणमें रतहुए जो योगी-जन आकाश मार्गमें जाते हैं अर्थात् प्राण छोड़ते हैं वे धम्यहैं ॥ ३८७ ॥

एतज्जानातियोयोगीएतत्पठतिनित्यशः ॥

सर्वदुःखविनिर्मुक्तो लभते वांछितं फलं ॥ ३८८ ॥

अर्थ—जो योगी इस शास्त्रको जानता है और इसको नित्य पढ़ता है वह सब दुःखोंसे विनिर्मुक्त हुआ वांछित फलको प्राप्त होता है ॥ ३८८ ॥

स्वरज्ञानशिरो यस्य लक्ष्मीकरतले भवेत् ॥

सर्वत्र च शरीरेऽपि सुखं तस्य सदा भवेत् ॥ ३८९ ॥

अर्थ—जिस मनुष्यमें स्वरज्ञान है उसके पैरोंके तलवोंमें लक्ष्मी है और सब शरीरोंमें उसको सदा सुख रहता है ॥ ३८९ ॥

प्रणवः सर्ववेदानां ब्राह्मणो भास्करो यथा ॥

मृत्युलोके तथा पूज्यः स्वरज्ञानी पुमानपि ॥ ३९० ॥

अर्थ—सब वेदोंमें जैसे अंकार और ब्राह्मण तथा सूर्य जैसे पूजित है इसी तरह मृत्युलोकमें स्वरज्ञानी पुरुष भी पूज्य है ॥ ३९० ॥

नाडी त्रयं विजानाति तत्त्वज्ञानं तथैव च ॥

नैव तेन भवेत्तुल्यं लक्षकोटिरसायनं ॥ ३९१ ॥

अर्थ—तीनों नाडी तथा तत्त्वज्ञानको जो जानता है उसके समान लाखों किरोडों कोई रसायन नहीं है ॥ ३९१ ॥

एकाक्षरप्रदातारं नाडिभेदनिवेदकं ॥

पृथिव्यां नास्ति तद्रव्यं यद्वत्त्वाचानृणो भवेत् ॥ ३९२ ॥

अर्थ—नाडीभेदके एक अक्षरको देनेवालेके समानभी कोई द्रव्य ऐसा नहीं है कि जिसे अनृणी होवे ॥ ३९२ ॥

स्वरतत्त्वं तथा युद्धं देवि वश्यस्त्रियस्तथा ॥

गर्भमागमनं रोगं कालाख्यानं तथोच्यते ॥ ३९३ ॥

अर्थ—हे देवि इसमें क्रमसे स्वरज्ञान तत्त्वज्ञान स्त्रीवशीकरण गर्भ, गमन, आगमन, रोग, कालज्ञान, इत्यादिक, प्रकरण कहे हैं ॥ ३९३ ॥

एवं प्रवर्तितं लोके प्रसिद्धं सिद्धयोगिभिः ॥

चंद्रार्कग्रहणे जाप्यं पठतीति सिद्धिदायकं ॥ ३९४ ॥

अर्थ—ऐसे लोकमें प्रवृत्त हुआ सिद्धयोगी जनोंसे प्रसिद्ध यह स्वरोदय चंद्र तथा सूर्यग्रहणमें जपना इसके पढ़नेवालोंके सिद्धि होती है ॥ ३९४ ॥

स्वस्थाने तु समासीनो निद्रामाहारमल्पकः ॥

चित्तयेत् परमात्मानं यो वेद स भविष्यति ॥ ३९५ ॥

इति श्री उमामहेश्वरसंवादे स्वरज्ञानं समाप्तम्

शुभम् भूयात् ।

अर्थ—आपने स्थानमें बैठा हुआ स्वल्प निद्रा और स्वल्प आहारवाला योगीजन जो परमात्माका चिंतन करता है वह कहें सोही होगा ॥ ३९५ ॥

इति श्री उमामहेश्वरसंवादे शिवस्वरोदये बेरीनिवासी वस्तीरामकृत भाषाटीका समाप्ता.